नागयज्ञ

(नाटक)

लेखक

पं० दरबारीलाल सत्यभक्त

संस्थापक—सत्यसमाज, वर्धा

हीराबाग, बम्बई नं० ४

द्वितीय संस्करण १०००] मूल्य १। रु० [अक्टूबर १९३४

प्रकाशकीय

पं० दरबारीलालजी 'सत्यभक्त' जैनसमाजके उग्र और प्रगतिशील विद्वान् एवं सुधारक रहे हैं। आज वे सांप्रदायिकताके बंधनसे परे हटकर, एक नई सर्वधर्मसमभावी समाज-व्यवस्था 'सत्य-समाज' की स्थापना कर, तन-मनसे उसके प्रचारमें लगे हुए हैं। भारतीय राष्ट्रीयताके पुण्य-केन्द्र वर्धामें आपका आश्रम 'सत्याश्रम' है।

पंडितजीका निश्चय-बल अटूट है। उनकी साधना, उनका समर्पण और तर्क-बल प्रशंसनीय है। परिग्रहरहित, आजकल वे कर्मभिक्षु हैं। सहिष्णुता उनका जीवन है, स्पष्टवादिता उनका स्वभाव। सुधार पर स्वयं अमल कैसे करना, इसके वे प्रतीक हैं। जो कुछ 'साहित्य' में वे लिखते हैं; स्वयं जीवनमें उसका अमल करते हैं। पंडितजी महान हैं।

यह 'नागयज्ञ' उनके सिद्धान्त, मिशन और कार्यके प्रचारका ढंग है। इसे प्रचार-साहित्यके रूपमें ही वे देना चाहते हैं; लेकिन देखिये—नाटकीय कला और तत्वसे भी यह सर्वांगपूर्ण हो गया है। पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लेकर आजके समय पर इसे किस तरह घटाया गया है—इसे लेखककी 'प्रस्तावना' जो अंतमें दी गई है—पढ़कर समझ लीजिये।

'हिन्दी' में नाटकोंका यों ही अभाव है। फिर सामाजिक, सफल नाटकोंकी दृष्टिसे तो उसका अंचल बिलकुल सूना है। यह पौराणिक, ऐतिहासिक नाटक होते हुए भी, सामाजिकताका पुट इसमें कम नहीं है। 'हिन्दी-साहित्य' को यह अपूर्व देन है।

अन्य प्रांतीय भाषाओंको भी 'हिन्दी' की ओरसे देनेके लिये यह प्रस्तुत है। पाठक इससे प्रेरणा और संदेश लेंगे।

यही भावना रखते हुए—

बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ
हीराबाग, बम्बई ४
अगस्त, १९५४

भानुकुमार जैन
मंत्री

प्रस्तावना

नागयज्ञ एक ऐतिहासिक घटना है जिसे अर्जुनके प्रपौत्र राजा जनमेजयने किया था। महाभारतमें जब मैंने यह घटना पढ़ी तब मेरे मनमें सहसा विचार आया कि इतिहास अपनेको दुहरा रहा है। आज हिन्दू-मुसलमानोंकी जैसी समस्या है वैसी किसी जमानेमें आर्य और नागोंके बीचमें भी थी और आर्य और नाग मिलकर किसी दिन एक हो सकेंगे इसकी आशा उस समय दुराशा-सी थी। पर देखते हैं कि आज न वे आर्य बचने पाये न वे नाग। दोनों मिटकर या मिलकर हिन्दू बन गये। वे कैसे बने आदि प्रश्नोंका उत्तर भी थोड़े बहुत अंशमें महाभारतसे समझा जा सकता है।

आर्य और नागोंका धर्म जुदा-जुदा था। आर्य इन्द्रके पुजारी थे, यज्ञ करते थे, मूर्ति न मानते थे, वेषभूषा भिन्न थी, भाषा भिन्न थी, वंशपरम्परा भिन्न थी, उत्पीड़क थे। नाग लोग शिवके पुजारी थे, पूजा करते थे, मूर्ति मानते थे, पीड़ित थे, वंशपरम्परा—वेषभूषा—भाषामें भिन्न थे।

जब तक मनुष्यताका उदय न हुआ तब तक ये आपसमें लड़ते रहे। यहाँ क्रूरताकी हद कर दी। पर जब मनुष्यताका उदय हुआ तब दोनोंको एक दूसरेकी बातें अच्छी लगने लगीं, मेरा-तेरा भूलकर दोनोंमें जो अच्छी बातें थीं, उसे दोनोंने अपना लिया। आर्य मूर्तिपूजक हो गये, आर्योंने अपने देवको देव कहा तो नागोंके देव शिवको महादेव कहा। इस उदारताने वैरभाव धो डाला। शताब्दियोंका द्वन्द्व शान्त हो गया।

इस काममें अंतिम और मुख्य प्रयत्न था आस्तीक मुनिका। इनके पिता आर्य थे और माता नाग। इस प्रकारके विवाह और उनसे पैदा होनेवाली सन्तानें दो जातियोंके सम्मिलनमें बहुत उपयोगी होती हैं।

अपनी अपनी विशेषतासे चिपके रहनेसे विशेषता और समानता सब नष्ट हो जाती है। अहंकार सबको खा जाता है। आर्यों और नागोंने जब इस तत्त्वको समझा तब दोनोंमें एकता हुई।

आज भी वैसी ही परिस्थिति है। हिन्दू-मुसलमान मिलकर एक नहीं हो सकते यह मान्यता बहुतोंकी है। पर अगर आर्य और नाग मिलकर एक हो गये तो मैं नहीं समझता कि हिन्दू-मुसलमानोंमें उनसे अधिक क्या अन्तर

है। नागयज्ञ सरीखी क्रूरता तो हिन्दू और मुसलमान दोनोंमेंसे कोई भी नहीं दिखा सकता।

हिन्दू-मुसलमानोंमें क्या क्या भेद कहा जाता है, इसकी एक तालिका बनाकर उसपर विचार करनेसे उन भेदोंकी निस्सारता मालूम हो जायगी। जैसे—

हिन्दू	मुसलमान
१ मूर्तिपूजक	मूर्तिविरोधी
२ मांसत्यागी	मांसभक्षी
३ गोवधविरोधी	शूकरवधविरोधी
४ बहुदेववादी	एकईश्वरवादी
५ पुनर्जन्म मानते हैं	क़यामत मानते हैं
६ पूजामें गाते हैं, बाजा बजाते हैं	नमाजमें शान्त रहते हैं
७ पूर्व तरफ प्रणाम करते हैं	पश्चिम तरफ नमाज पढ़ते हैं
८ चोटी रखते हैं	दाढ़ी रखते हैं
९ हिंदुस्थानी हैं	अरबी हैं
१० लिपि देवनागरी है	लिपि फारसी है
११ भाषा हिन्दी है	भाषा उर्दू है
१२ धार्मिक उदारता अधिक	धार्मिक उदारता कम
१३ नारीअपहरण नहीं करते—	करते हैं
१४ मुसलमानोंको अछूत समझते हैं	किसीको अछूत नहीं

१ मूर्तिपूजा

१ आर्यसमाजी, ब्राह्मसमाजी, स्थानकवासी आदि अनेक सम्प्रदाय हिन्दुओंमें भी ऐसे हैं जो मूर्तिपूजाके विरोधी हैं। सिक्ख और तारणपंथी अर्ध मूर्तिपूजक हैं अर्थात् वे शास्त्रकी पूजा मूर्तिसरीखी करते हैं और मुसलमान भी अर्ध मूर्तिपूजक हैं, वे ताज़िया और क़ब्र पूजते हैं, काबाका पत्थर चूमते हैं, मसजिदोंमें जूते पहिनकर जानेकी मनाई करते हैं, यह सब भी एक तरहकी मूर्तिपूजा है। ईंट, चूना, पत्थरमें आदरभाव भी मूर्तिपूजा है, इसलिये हिन्दू-मुसलमान दोनों ही मूर्तिपूजक हैं। यों असलमें न हिन्दू मूर्तिपूजक हैं, न मुसलमान मूर्तिपूजक हैं। मूर्ति या ईंट, चूना, पत्थरको ईश्वर या खुदा कोई नहीं मानता। सभी इन्हें खुदा या ईश्वरको याद करानेवाला निमित्त मानते हैं। किसीको मसजिद देखकर खुदा याद आता है, किसीको मूर्ति देखकर

खुदा याद आता है। सब धर्मस्थान या प्रतीक खुदाको पढ़ने या समझनेकी खिलौने हैं। रामजीकी मूर्तिके सामने पूजा करनेवाला हिन्दू रामजीके नीतिमत्ता, प्रजापालकता, त्याग, उदारता, वीरता आदि गुणोंका वर्णन करता है। यह नहीं कहता कि हे भगवान्, तुम संगमरमरके बने हो, बड़े चिकने हो, बड़े चमकदार हो आदि। इसी प्रकार मक्काकी तरफ मुँह करके नमाज पढ़नेवाला मुसलमान मक्काके पत्थरोंका ध्यान नहीं करता, दोनों सिर्फ सहारा लेते हैं। ध्यान तो खुदा या ईश्वरका करते हैं इसलिये दोनों मूर्तिपूजक नहीं हैं।

हाँ, इस्लाममें जो अमुक तरहकी मूर्तिपूजाकी मनाई की गई है उसका कारण यह है कि हजरत मुहम्मद साहिबके समयमें मूर्तियोंके नामपर दलबन्दी लड़ाई-झगड़े बहुत हो गये थे। हरएक मूर्ति मानों ईश्वर हो और मनुष्योंके समान मानो ईश्वरोंमें भी झगड़े होते हों। मूर्तिको आधार बनाकर ये सब बुराइयाँ फल-फूल रही थीं इसलिये मूर्तियाँ अलग कर दी गईं। पर ईश्वरको याद करनेके लिये जो सहारे थे वे नष्ट नहीं किये गये। मतलब यह कि बुराई मूर्तिमें नहीं है किन्तु उसे ईश्वर माननेमें, मूर्तियोंके समान ईश्वरको जुदा जुदा कर लड़ानेमें, उनके निमित्त वैर-विरोध बढ़ानेमें है। इस बातको हिन्दू भी मंजूर करेगा, मुसलमान भी मंजूर करेगा। मूर्तिका सहारा लेना नास्तिकता नहीं है। यह तो रुचि, योग्यता आदिका सवाल है। इसलिये मूर्ति, अमूर्तिको लेकर सम्प्रदाय न बनाना चाहिये। हो सकता है कि मुझे मूर्तिके सहारेकी जरूरत न हो और मेरे बच्चेको या पत्नीको हो, अथवा मुझे उसकी जरूरत हो किन्तु मेरे बेटेको न हो, इसलिये मूर्ति-अमूर्तिके सम्प्रदाय न बनना चाहिये। रुचिके अनुसार उपयोग करना ही उचित है।

जब कि हिन्दू बिना मूर्तिके सन्ध्या, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाएँ करते हैं तब मूर्तिके बिना नमाज क्यों नहीं पढ़ी जा सकती और जब मुसलमान कब्र, ताजिया, काबा आदिका सहारा लेते हैं तब मूर्तिमें क्या झगड़ा है। यह तो कोई बात न हुई कि हजरत मुहम्मद साहिब की कब्र का विरोध किया जाय पर दूसरे फकीरोंकी कब्रों पर रेवड़ियाँ चढ़ाई जाँय। अपनी, अपने बापकी और राजा-महाराजाओंकी, देशसेवकोंकी और अनेक सुन्दरियोंकी तसवीरें घरमें लटकाई जाँय किन्तु हजरत मुहम्मद साहिबकी तसवीरका विरोध किया जाय। यह सब तो एक तरहसे हजरतका अपमान कहलाया। हजरतने अगर अपना स्मारक बनानेकी मनाई की थी तो वह तो

उनकी नम्रता थी और यह विचार था कि लोग कहीं बुतपरस्त न बन जाँय। और, सीधीसी बात यह है कि यह सब रुचि और लियाकत का सवाल है। इसमें विरोध करने की या किसी बात पर ज़ोर देनेकी जरूरत नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों को रुचि और-लियाकत पर ध्यान देना चाहिये। इन्हें मजहबी भेद का कारण न बनाना चाहिये। व्यवहार में तो हिन्दुओं में भी मूर्तिपूजक हैं और उसके विरोधी भी हैं और मुसलमानों में भी मूर्तिपूजक हैं और उसके विरोधी भी हैं।

२ मांसभक्षण

१—हिन्दुओंमें सौ में पचहत्तर हिन्दू मांसभक्षी हैं। शूद्र कहलानेवाली अधिकाँश जातियाँ मांस खाती हैं; बंगाल-उड़ीसा-मैथिल आदि प्रान्तोंमें उच्च-जातिके कहलानेवाले ब्राह्मण आदि भी मांस खाते हैं। क्षत्रिय लोग अधिकतर मांस खाते हैं। सिक्ख मांस खाते हैं, ईसाई भी खाते हैं; इसलिये मांसभक्षण हिन्दू-मुसलमानोंके भेदका कारण नहीं कहा जासकता। बहुतसे बहुत इतना ही हो सकता है कि जो लोग मांसभोजनसे बहुत अधिक परहेज करते वे मांसभक्षियोंके यहाँ भोजन न करें। उनके साथ भोजन करनेमें साधारणतः आपत्ति न होना चाहिये।

पर इस हालतमें हिन्दू-मुसलमानका भेद न होगा मांसभोजी-शाकभोजीका भेद होगा।

हाँ, मांसभोजन का विरोध हिन्दू और मुसलमान दोनों करते हैं। अहिंसा को दोनों महत्व देते हैं। यही कारण है कि हज करते समय हर एक मुसलमानको मांसका बिलकुल त्याग करना पड़ता है। जूँ मारना भी मना है। साधारण दिनोंमें अगर किसी प्राणीको मारना भी पड़े तो तड़पाना मना है। अगर हिंसा धर्म होता तो हजके दिनोंमें अधिकसे अधिक मांस खानेका उपदेश होता, मांसत्यागका नहीं। हिन्दुओंमें भी मांसत्यागको बड़ा पुण्य माना है। इस-प्रकार मूलमें तो दोनों ही अहिंसावादी हैं। आदतके कारण या कमजोरीके कारण जो हिंसा रह गई है वह दोनों तरफ़ है। ऐसी हालतमें झगड़नेका क्या कारण है?

३ गोवध

गोवध हो या शूकरवध हो या और भी किसी प्राणी का वध हो, जब दोनों

ही अहिंसाको महत्व देते हैं तब दोनोंको वधका विरोधी होना चाहिये। गोवध और शूकरवधके विरोधपर जो खास जोर दिया जाता है उसके कारण ढूँढनेकी अगर कोशिश की जाय तो दोनों एक दूसरेके मतका आदर करेंगे। हिंदुस्थान कृषिप्रधान देश है। खेतीकी जरूरत हिंदुओंको भी है और मुसलमानोंको भी है। और खेतीमें यहाँ गायका जो महत्व है, वह सबको मालूम है। इसलिये गोवधका विरोध मुसलमानोंको भी करना चाहिये।

शूकरवध देखनेका दुर्भाग्य अगर किसीको मिला हो तो वह मांसभक्षी ही क्यों न हो तो भी उसका दिल थर्रा जायगा। जिस तरह वह चीत्कार करता है—जिस तरह वह जिंदा जलाया जाता है, इससे क्रूरसे क्रूर आदमीकी रूह काँप जाती है। परिस्थिति अनुकूल न होनेसे यद्यपि इस्लाम पूरी तरहसे पशुवध नहीं रोक पाया फिर भी इस तरहकी क्रूरताका विरोध तो उसने किया ही। किसी भी जानवरको तड़पानेकी अनुमति तो उसने कभी न दी, इस दृष्टिसे उसका शूकरवध विरोध बहुत ही उचित है। हिन्दू तो अपनेको मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक अहिंसावादी मानते हैं इसलिये उन्हें तो मुसलमानोंकी अपेक्षा भी अधिक शूकरवध-विरोधी होना चाहिये।

पर यह सवाल हिंसा अहिंसाकी दृष्टिसे विचारणीय नहीं रह गया है। इसके भीतर अधिकारका अहंकार घुस गया है। कसाईघरमें दिन-रात सैकड़ों गायें भी प्रायः हिंदुओंके यहाँसे खरीदी जाती हैं, इस पर हिंदुओंको एतराज नहीं होता पर ईदके गोवधपर एतराज होता है। इसलिए यह प्रश्न अधिकारका प्रश्न बन जाता है।

जहाँ अधिकारका सवाल आया वहाँ मुसलमानोंको अपने अधिकारकी रक्षाके लिये गोवध करना जरूरी हो जाता है। इसलिये गोवध रोकनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि साधारण पशुवधके कानूनके अनुसार मुसलमानोंको कुर्बानी करने दी जाय। हाँ, आमरास्तेपर या खुली जगहमें पशुवध न करनेका जो सरकारी कानून है, वह धार्मिक भावनासे एक हिन्दूके नाते नहीं, किन्तु एक साधारण नागरिकके नाते पालन करना चाहिए। सीधी बात यह है कि गोवधके प्रश्नपर हिन्दुओंको पूरी उपेक्षा कर देना चाहिये। गोवध रोकनेके लिये शूकरवध करना निरर्थक है। क्योंकि इससे गोवध बढ़ेगा और दोनों पक्षोंमें होनेवाला मनुष्यवध और हृदयवध और भी कई गुणा होगा।

गोवध रोकनेका वास्तविक उपाय यह है कि गोपालन इस तरह किया

जाय कि किसीको गाय बेंचनेकी ज़रूरत ही न पड़े। आज जो हजारोंकी संख्यामें गोवध हो रहा है इसमें हिन्दुओंका हाथ कुछ कम नहीं है। जब वर्षे छः महीनेमें होनेवाला गोवध हिन्दू-मुसलमानोंके भाईचारेका वध क्यों करे!

४ बहुदेववाद

हिन्दू बहुदेववादी हैं पर अनेकेश्वरवादी नहीं हैं। मुसलमानोंके समान वे भी एकेश्वरवादी हैं और हिन्दुओंके समान मुसलमान भी बहुदेववादी हैं। हिन्दू एक ही परमात्मा मानते हैं, उसके अवतार, अंश, विभूतियाँ, दूत आदि अनेक मानते हैं; इस प्रकार नाना रूपोंसे एकही ईश्वरको पूजते हैं। मुसलमान एक ही खुदाके हजारों पैगम्बर मानते हैं और उनका सन्मान भी करते हैं। हजारों पैगम्बरोंके होनेपर भी जैसे खुदा एक है उसी प्रकार हजारों सेवकों, भक्तों, अवतारोंके होनेपर भी ईश्वर एक है।

फिर इस बातको लेकर हिन्दुओं-हिन्दुओंमें ही इतना मतभेद है कि उतना हिन्दू-मुसलमानोंमें नहीं है। बहुतसे हिन्दू ईश्वर ही नहीं मानते, मुसलमान ईश्वर तो मानते है। अगर अनीश्वरवादी हिन्दुओंसे ईश्वरवादी हिन्दू प्रेमसे मिलकर रह सकते हैं, उनसे सामाजिक सम्बन्ध भी रख सकते हैं, जैसे जैनियों और बौद्धोंसे रखते हैं, तो ईश्वरको न माननेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर एक क्यों नहीं हो सकते।

५ पुनर्जन्म

हिंदुओंका पुनर्जन्म और मुसलमानोंकी क़यामत इसमें वास्तवमें कोई फर्क नहीं है। दोनों मान्यताओंका मतलब यह है कि मरनेके बाद इस जन्मके पुण्य पापका फल मिलेगा। अब वह फल मरनेके बाद तुरन्त ही मिलना शुरू हो जाय या कुछ समय बाद मिले, इसमें धार्मिक दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि दोनों ही के द्वारा पापसे भय और पुण्यका आकर्षण पैदा होता है। इसलिये इस बातको लेकर भी दोनोंमें कोई भेदभाव नहीं है।

६ बाजा

हिंदू, पूजामें बाजा बजाते हैं पर मुसलमान भी बाजेके विरोधी नहीं हैं। ताजियोंके दिनोंमें तो इतने बाजे बजाते हैं कि शहर भरकी नींद हराम हो जाती है। और हिन्दू, पूजामें बाजा बजाने पर सन्ध्यावन्दन आदिके समय ऐसे चुप रहते हैं कि स्वास भी रोक लेते हैं। इससे इतना पता तो लगता है कि बाजेके विरोधी न हिन्दू हैं न मुसलमान, न मौनका विरोधी दोनोंमेंसे कोई है; बात सिर्फ मौके की है।

इस देशमें बाजेका इतना अधिक रिवाज़ है कि उसे बीमारी तक कहा जा सकता है। कभी कभी मुझे व्याख्यान देते समय इसका बड़ा कड़ुआ अनुभव हुआ करता है। व्याख्यान खूब जमा है, श्रोता तल्लीन हैं, इतनेमें पासके मन्दिरसे घंटे की आवाज आई और ऐसी आई कि मेरी आवाज बेकाम हो गई। पुजारियोंको घंटेसे कितना मजा आया सो तो मालूम नहीं, पर सैकड़ों और कभी कभी हजारों श्रोताओंका मजा किरकिरा होगया, यह तो सबने अनुभव किया। कभी-कभी सभाके पाससे विवाह आदिके जुलूस ही निकलकर मजा किरकिरा कर दिया करते हैं, इससे इतना तो लगता है कि बाजोंको कुछ कम करना जरूरी है। पर इससे भी जरूरी यह है कि जो कुछ हो नागरिकताके आधार पर बनाये गये कानूनके अनुसार हो या समझ-बूझकर हो। नागरिकताके आधारपर नियम कुछ निम्नलिखित ढंगसे बनाये जा सकते हैं।

क—रातके दस बजेके बादसे सुबह पाँच बजे तक बाजा बजाना बन्द रहे।

ख—मसजिदमें जब नमाज पढ़ी जाती हो तब आसपास बाजा बजाना बन्द रहे। पर इसकी सूचना किसी झंडे या निशानसे दी जाय और समय नियत रहे।

ग—जहाँ पचीस या पचास आदमियोंसे अधिककी सभा भरी हो व्याख्यान हो रहा हो तो सूचना मिलते ही वहाँ बाजा बजाना बन्द रहे।

घ—बाजा बजाने पर टेक्स लगाया जाय, आदि। इस प्रकारके नियम बनाये जायँ पर वे नागरिक अधिकारोंकी समानतासे रक्षा करते हों। मज़हबके घमंडकी रक्षा न करते हों।

पर जब तक यह बाजा-कानून न बने तब तक गोवधके समान इस प्रश्न पर भी पूरी उपेक्षा की जाय। जिसको बजाना हो बजाये न बजाना हो न बजाये। व्याख्यान होता हो, नमाज पढ़ी जाती हो, किसी घरमें गमी हुई हो तो इस बातकी सूचना बाजे बजवानेवालोंको कर दी, उन्हें जँची तो ठीक, न जँची तो न सही, अधिकारके बल पर या डरा-धमकाकर या मारपीट कर बाजे रुकवानेका कोई मतलब नहीं। इससे तो प्राणोंके ही बाजे बज जाते हैं। पूजा और नमाज सब नष्ट हो जाते हैं।

सच्चे धर्मकी बात तो यह है कि अगर नमाज पढ़ी जाती हो और ठाकुरजीकी सवारी गाजे-बाजेके साथ निकले तो मसजिदके सामने आते ही सवारीको रुक जाना चाहिये और सब लोग शान्तिसे इस तरह खड़े रहें मानों

मानों नमाजमें शामिल होगये हों। नमाज खत्म होनेपर मुसलमान लोग सवारीको सन्मानसे विदा करें। अगर सवारी नमाजके पहिले ही आ जाय तो सवारीको सन्मानसे विदा देनेपर मुसलमान लोग नमाज पढ़ें, अगर इसके लिये दस पांच मिनट नमाजमें देर हो जाय तो कोई हानि नहीं।

हिन्दू और मुसल्मान किसी तरह दो हो सकते हैं पर ईश्वर और खुदा तो दो नहीं हो सकते। तब खुदाके लिये ईश्वरका और ईश्वरके लिये खुदाका अपमान किया जाय तो क्या खुदा या ईश्वर किसी भी तरह खुश होगा।

यह सचाई अगर ध्यानमें आ जाय तो नमाज और पूजाका झगड़ा ही मिट जाय।

लोग प्रतिदिन एक ही तरहसे नमाज पढ़ते हैं उन्हें कभी पूजाका भी तो मजा लेना चाहिये और जो सदा पूजा करते हैं उन्हें नमाजका भी मजा लेना चाहिये। खाने पीनेमें जब हमें नये नये स्वाद चाहिये तब क्या मनको नये नये स्वाद न चाहिये ? और उस हालतमें तो ये कर्तव्य हो जाते हैं जब ये नये नये स्वाद, प्रेम, शान्ति और शक्तिके लिये बड़े मुफीद साबित होते हैं। पूजा, नमाज, प्रार्थना आदि सबका उपयोग हमारे जीवनके लिये हरतरह मुफीद है।

७ पूर्व-पश्चिम

एक भाईने पूछा कि आप हिंदू-मुसलमानोंमें क्या मेल करेंगे ? एक पूर्वको देखता है और एक पश्चिमको ? मैंने कहा—मिलते समय या बातचीत करते समय ऐसा होना जरूरी है। आप जिस तरफको मुँह किये हैं उस तरफको अगर मैं भी करूँ तो आप मेरी पीठ देखेंगे, बात क्या करेंगे ? मैं अगर छातीसे छाती लगाकर आपसे मिलना चाहूँ तो जिस तरफको आपका मुँह होगा उससे उल्टी दिशामें मेरा मुँह होगा अन्यथा मिल न सकेंगे। मिलनेके लिये जब एक दूसरेसे उल्टी दिशामें मुँह करना जरूरी है, तब पूजा और नमाजका सहयोग होने या मिलनेमें उल्टी दिशा बाधक क्यों बने ?

समझमें नहीं आता कि ऐसी छोटी छोटी बातें हमारे जीवनमें अड़ंगा क्यों डालती हैं। और मर्मकी बात समझनेकी कोशिश क्यों नहीं की जाती। दिशाका झगड़ा एक तो निःसार है और निःसार न भी हो तो भी बेबुनियाद है। मुसल्मान नमाजके लिये मक्काकी तरफ मुँह करते हैं; हिन्दुस्थानसे मक्का पश्चिममें है इसलिए पश्चिममें मुँह किया जाता है। योरुपमें नमाज पूर्वमें मुँह

करके पढ़ी जाती है—दक्षिण आफ्रिकामें उत्तर तरफ और उत्तरीय देशोंमें दक्षिण तरफ। खुद मक्कामें किब्लाके चारों तरफ चार इमाम नमाज पढ़ने बैठते हैं—एकका मुँह पूर्वको, एकका मुँह पश्चिमको, एकका उत्तरको और एकका दक्षिणको, दिशाकी बात ही नहीं है। और हिन्दू तो जब सूर्यको नमस्कार करते हैं तब उनका मुँह पूर्वकी तरफ होता है अन्यथा जिधर मूर्ति होती है उधर ही प्रणाम करते हैं, मूर्तिका मुँह पूर्वको हो तो पुजारीका मुँह पश्चिमको होगा जिससे मूर्तिसे सामना हो सके।

साधारणतः हिन्दूदेवोंका स्थान सब जगह माना जाता है। ईश्वरकी शक्तियाँ नाना ढंगसे नाना दिशाओंमें हैं इसलिये हिन्दू सब दिशाओंमें प्रणाम करता है। तीर्थोंके विषयमें यह कहा जा सकता है—

सेतुबन्ध, जेरुसलम, काशी, मक्का या गिरनार।
सारनाथ, सम्मेदशिखरमें बहती तेरी धार॥
सिन्धु, गिरि, नगर, नदी, वन, ग्राम।
कहूँ क्या, कहाँ-कहाँ है धाम?

किब्लाके विषयमें यह कहा जा सकता है—

क्या मसजिद, मन्दिर, गिरजाघर, मक्का और मदीना।
खुदा—जहाँ किब्ला है वो ही खुदा; भरा तिलतिलमें।
है किब्ला तेरे दिलमें॥

अब बतलाइये झगड़ा किधर है?

८ दाढ़ी चोटी

हिन्दू-मुस्लिम दंगोंको 'दाढ़ी-चोटी संग्राम' कहा जाता है। जब कि दाढ़ी-चोटी ये फैशन हैं। इनका हिन्दू-मुसलमानोंसे कोई ताल्लुक नहीं। सिक्ख दाढ़ी रखते हैं—हिन्दू संन्यासी दाढ़ी रखते हैं—राजस्थानके तथा अन्य प्रान्तोंके क्षत्रिय दाढ़ी रखते हैं और भी बहुतसे हिन्दू दाढ़ी रखते हैं; जब कि हजारों मुसलमान ऐसे हैं जो दाढ़ी नहीं रखते—इसलिये दाढ़ीको लेकर हिन्दू मुसलमानोंमें कोई भेद नहीं है।

रह गई चोटी की बात, सो चोटीका भी कोई नियम नहीं है। लाखों हिन्दू चोटी नहीं रखते और बहुतसे मुसलमान, किसी न किसी तरह चोटी रखते हैं—वे सिरपर चोटी नहीं रखते, टोपी पर चोटी रखते हैं; पर रखते हैं। इसलिये चोटीसे भी हिन्दू मुसलमानोंमें कोई भेद नहीं है।

असल बात यह है कि यह सब फैशन है। पुराने जमानेमें लोग स्त्रियों-सरीखे लम्बे बाल रखते थे। साफ सफाईकी अड़चनसे लोग गर्दन तक बाल रखने लगे। बादमें किनारेके बाल कटाकर बीचमें बड़ा चोटला रखने लगे, जैसे दक्षिणमें अभी भी रिवाज है, वह चोटला कम होते-होते चार बालोंकी चोटी रह गई, और अन्तमें चोटी भी साफ हो गई। जैसे लम्बी लम्बी मूछोंसे मक्खी-सरीखी मूछें रह गईं और अन्तमें साफ हो गईं, यही बात चोटीकी हुई। पश्चिम में एक और फेशन था-लोग सिर तो घुटा लेते थे पर एक तरहकी टोपी लगा लेते थे, जिस पर बहुत सुन्दरतासे सजाये हुए नकली बाल रहते थे। पुराने जमानेमें इंग्लेण्डके लार्ड ऐसी टोपियोंका उपयोग करते थे, इस प्रकार सिरके बालोंका फेशन टोपीके बालोंका फेशन बन गया और इसीलिये सिरकी चोटी तुर्कस्तानमें टोपीकी चोटी बन गई। इसीलिये तुर्की टोपी लगानेवाले मुसलमान सिर पर चोटी न रखकर टोपीपर चोटी रखते है। हाँ, बहुतसे हिन्दू और मुसलमान न सिरपर चोटी रखते हैं, न टोपीपर चोटी रखते हैं। इस प्रकार हिन्दुत्व और मुसलमानियत-दोनों ही न चोटीसे लटक रही हैं न दाढ़ीमें फँसी हैं इसलिये इस बातको लेकर झगड़ा व्यर्थ है।

९. देशभेद

कहा जाता है कि हिन्दू पहिलेसे यहाँ रहते हैं और मुसलमान अरबी हैं। या पिछले हजार वर्षमें बाहरसे आये हैं.। इस प्रकार दोनोंके पूर्वज जुदे-जुदे होनेसे दोनोंमें स्थायी एकता नहीं हो पाती।

इसमें सन्देह नहीं कि मुट्ठी दो मुट्ठी मुसलमान बाहरसे जरूर आये हैं पर आज जो हिन्दुस्थानमें आठ करोड़ मुसलमान हैं वे जातिसे हिन्दू ही हैं। यद्यपि अब एक धर्मका नाम भी हिंदू हो गया है और सामाजिक क्षेत्र भी बट गया है। इसलिये मुसलमान अपनेको हिन्दू न कहें—हिन्दी, हिंदुस्थानी या भारतीय आदि कहें पर इसमें शक नहीं कि हिन्दुओंकी जाति और मुसलमानोंकी जाति जुदी नहीं है। जिन हिन्दुओं ने धर्मपरिवर्तन कर लिया वे ही मुसलमान कहलाने लगे। इससे जाति या वंशपरम्परा कैसे बदल गई? आज मैं अगर मुसलमान हो जाऊँ तो कुछ रहन-सहन बदल लूँगा नाम भी बदल लूँगा पर क्या बाप भी बदल लूँगा? अपने पुरखे भी बदल लूँगा? बाप और पुरखे वे ही रहेंगे जो मुसलमान होनेसे पहिले थे, तब जाति जुदी कैसे हो जायगी। इसलिये राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, व्यास, चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रम आदि जैसे हिन्दुओंके

पुरखे हैं वैसे ही मुसलमानोंके पुरखे हैं दोनोंको उनका गौरव मानना चाहिये। इसप्रकार जातीय दृष्टिसे हिन्दू मुसलमान बिलकुल भाई-भाई हैं, धर्म जुदा है तो रहने दो। बुद्ध और अशोक का धर्म तो आजके हिन्दू भी नहीं मानते, फिर भी उन्हें अपना पूर्वज समझते हैं। कई दृष्टियोंसे हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्ममें जितना अंतर है, उतना इसलाम में नहीं।

यों तो कोई भी धर्म बुरा नहीं है। कौनसा धर्म अच्छा और कौनसा बुरा या कम अच्छा यह तुलना करना फजूल है। अपनी अपनी योग्यता, परिस्थिति और रुचिके अनुसार सभी अच्छे हैं। हिन्दू अगर मुसलमान होगये तो इससे किसीकी भी धर्मकी हानि नहीं हुई। सत्य सब जगह था जिसको जहाँसे लेना था सो ले लिया। इसमें किसीका क्या बिगड़ा। रुचिके अनुसार धर्मक्रिया करनेसे जाति या देश जुदे-जुदे नहीं होजाते। इसलिये मुसलमान भी हिन्दुओंके समान हिन्दू, हिन्दी, हिंदुस्थानी हैं। उनका भी इस देशपर उतनाही अधिकार है जितना हिन्दू कहलानेवालोंका। दोनोंही एक माता की सन्तान हैं।

रह गई उन मुसलमानोंकी बात, जो बाहरसे आये हैं। ऐसे मुसलमान बहुत थोड़े तो हैं ही, साथ ही उनमें भी शायद ही कोई ऐसा मुसलमान हो जिसका सम्बन्ध हिन्दू रक्तसे न हो या वैसे इनेगिने ही होंगे। सम्राट् अकबरके बाद मुगल बादशाहोंमें भी आधेसे ज्यादा हिन्दू रक्त पहुँच गया था जो पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता ही गया।

मनुष्यने अपनी समाज-रचनासे चाहे जो कुछ व्यवस्था बनाई हो, लेकिन कुदरतने तो चलते फिरते प्राणियोंको मातृवंशी ही बनाया है। अर्थात् इनमें जातिभेद मादाके अनुसार बनता है नरके अनुसार नहीं। जमीनमें जैसे आप गेहूँ चना आदिके भेदसे जुदी जुदी जातिके झाड़ पैदा कर सकते हैं, वैसे गाय भैंस या नारीमें नरके भेदसे जुदी जुदी तरहके प्राणी पैदा नहीं कर सकते, वहाँ मादाकी जाति ही सन्तानकी जाति होगी।

ऐसी हालतमें हिन्दू माताओंसे पैदा होनेवाले मुसलमान भी जातिसे हिन्दू ही रहे, धर्मसे भले ही वे मुसलमान कहलाते हों। इस प्रकार बाहरसे आये हुए मुसलमान भी कुछ पीढ़ियोंमें पूरी तरह हिन्दू जातिके बन गये हैं। इसलिये यह कहना कि मुसलमान बाहरके हैं और हिन्दू यहाँके हैं बिलकुल गलत है। दोनों एक हैं—दोनोंके पुरखे एक हैं—जाति एक है—देश

एक है। इसलिये अरबी या हिन्दुस्थानी होनेसे हिन्दू-मुसलिम मेलको अस्वाभाविक बतलाना ठीक नहीं।

१० लिपिभेद

कहा जाता है कि हिन्दुओंकी लिपि देवनागरी है और मुसलमानोंकी फारसी, अब दोनोंमें मेल कैसे हो?

यह एक नकली झगड़ा है। इस्लामका मूल अगर अरबमें माना जाय तो अरबीको महत्ता मिलना चाहिये। फारस तो इसलामके लिये ऐसा ही है जैसा कि हिन्दुस्थान। फारसमें हिन्दुस्थानकी या हिंदुस्थानमें फारसकी लिपिको इतनी महत्ता क्यों मिलना चाहिये।

खैर, मिलने भी दो, पर न तो नागरी हिन्दुओंकी लिपि है न फारसी मुसलमानोंकी। बंगालके हिन्दू नागरी पसन्द नहीं करते, मद्रास तरफ भी हिन्दू नागरी नहीं समझते; खास तौरसे जिनने सीखी है उनकी बात दूसरी है। उधर पंजाब तरफके हिन्दू नागरीकी अपेक्षा फारसीका उपयोग ही अच्छी तरह करते हैं और मध्यप्रान्तके मुसलमान फारसी लिपि नहीं समझते। इस प्रकार भारतमें अगर फारसी लिपिको स्थान मिला है तो वह प्रान्तके अनुसार मिला है न कि जातिके अनुसार। इसलिये इन्हें हिन्दू मुसलमानोंके भेदका कारण बनाना भूल है।

अच्छी बात तो यह है कि सर्वगुणसम्पन्न कोई ऐसी लिपि हो जिसमें लिखने और पढ़नेमें गड़बड़ी न हो। छपाईका सुभीता हो, सरल भी हो। देवनागरीमें भी इस दृष्टिसे बहुत-सी कमी है, वह दूर करके या और किसी अच्छी लिपिका निर्माण करके उसे राष्ट्रलिपि मान लेना चाहिये।

पर जब तक लोगोंके दिल अविश्वाससे भरे हैं तब तकके लिये यह उचित है कि नागरी और फारसी दोनों ही राष्ट्रलिपियाँ मानली जाँय। हरएक शिक्षितको इन दोनों लिपियोंके पढ़नेका अभ्यास होना चाहिये और लिखना वही चाहिये जिसका पूरा अभ्यास हो। कुछ दिनों बाद जब जातिका घमंड न रह जायगा, तब जिसमें सुभीता होगा उसीको हिन्दू और मुसलमान दोनों अपना लेंगे।

११ भाषाभेद

लिपिकी अपेक्षा भाषाका सवाल और भी सरल है। जबर्दस्ती उसे जटिल बनाया जाता है। लिपि तो देखनेमें जरा अलग मालूम होती है और उसमें

सरल-कठिनका भेद नहीं किया जा सकता, पर भाषा तो हिन्दी-उर्दू एक ही है। दोनोंका व्याकरण एक है, क्रियाएँ एक हैं, अधिकांश शब्द एक है, कुछ दिनोंसे संस्कृतवालोंने संस्कृत शब्द बढ़ाने शुरू किये, अरबी-फारसीवालोंने अरबी-फारसी शब्द, बस एक भाषाके दो रूप होगये और इसपर हम लड़ने लगे। हम क्या कहें कि मिहर, इसीपर हमारी मिहरबानी और दयालुताका दिवाला निकल गया, प्रेम और मुहब्बतमेंही प्रेम और मुहब्बत न रही।

भाषा तो इसलिये है कि हम अपनी बात दूसरोंको समझा सकें। बोलनेकी सफलता तभी है जब ज्यादासे ज्यादा आदमी हमारी बात समझें। अगर हमारी भाषा इतनी कठिन है कि दूसरे उसे समझ नहीं पाते, तो यह हमारे लिये शर्म और दुर्भाग्यकी बात है। जब मैं दिल्ली तरफ आता हूँ तब, व्याख्यान देनेमें मुझे कुछ शर्मसी मालूम होने लगती है। क्योंकि मध्यप्रान्तनिवासी होनेके कारण और जिन्दगी भर संस्कृत पढ़ानेके कारण मेरी भाषा इतनी अच्छी अर्थात् सरल नहीं है कि वहाँके मुसलमान पूरी तरह समझ सकें। इसलिये मैं कोशिश करता हूँ कि मेरे बोलने में ज्यादा संस्कृत शब्द न आने पावें। इस काममें जितना सफल होता हूँ उतनी ही मुझे खुशी होती है, और जितना नहीं हो पाता उतनाही अपनेको अभागा और नालायक समझता हूँ। मुझे यह समझमें नहीं आता कि लोग इस बातमें क्या बहादुरी समझते हैं कि हमारी भाषा कमसे कम आदमी समझें। ऐसा है तो पागलकी तरह चिल्लाइये, कोई न समझेगा, फिर समझते रहिये कि आप बड़े पंडित हैं।

हरएक बोलनेवालेको यह समझना चाहिये कि बोलनेका मजा ज्यादासे ज्यादा आदमियोंको समझानेमें है। पागल की तरह बेसमझीकी बातें बकनेमें नहीं।

हाँ, सुननेवालोंको भी इतना खयाल रखना चाहिये कि हो सकता है कि बोलनेवाला सरलसे सरल बोलनेकी कोशिश कर रहा हो। पर जिन शब्दोंको वह सरल समझ रहा हो, वे अपने लिये कठिन हों। उसका भाषा-ज्ञान ऐसा इकतरफा हो कि वह ठीक तरहसे हिंदुस्थानी या सरल भाषा न बोल पाता हो। तो उसकी इस बेबशीपर हमें दया करना चाहिये। बिना समझे घमण्डी या ऐसाही कुछ न समझना चाहिये।

और बातोंमें लड़ाई हो तो समझमें आती है। पर भाषामें लड़ाई हो तो कैसे समझें ! भाषासे ही तो हम समझ सकते हैं। इसलिये चाहे लड़ना हो चाहे

लिखना हो, पर भाषा तो ऐसी ही बोलना पड़ेगी, जिससे हम एक दूसरेकी गाली या तारीफ समझ सकें।

१२ धार्मिक उदारता

हिन्दूधर्म और इस्लाम दोनों ही उदार हैं, और इस विषयमें साधारण हिन्दू समाज और मुसलमान समाज भी उदार है। पर मुश्किल यह है कि एक दूसरेको समझनेकी कोशिश कोई नहीं करते। हिन्दूधर्ममें तो साफ कहा है—

'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम् मत्तेजोंशसम्भवम्'

—जितनी विभूतियाँ हैं वे सब ईश्वरके अंशसे पैदा हुई हैं। इसलिये हिन्दू दृष्टिमें तो किसी भी धर्मके देव हों हिन्दूसे वन्दनीय हैं। साधारण हिन्दूका व्यवहार भी ऐसा होता है। उस व्यवहारमें विवेकरूपी प्राण फूँकनेकी जरूरत अवश्य है पर उसमें उदारता भी अवश्य है। इस्लामके अनुसार तो हर कौम और हर मुल्कमें खुदाने पैगम्बर भेजे हैं और उनका मानना हरएक मुसलमानका फर्ज है इसलिये साधारणतः मुसलमान किसी धर्मके महात्माओंका खण्डन नहीं करते, ऐसे मुसलमान कवियोंकी संख्या कम नहीं है। जिनने श्रीकृष्ण आदिकी स्तुतिमें पन्ने भरे हैं। दुर्गा और भैरव तकके गीत गानेमें मुसलमान कवि किसीसे पीछे नहीं हैं, पर दुख इस बातका है कि बहुत कम हिन्दुओंको इस बातका पता है। मुसलमानोंमें धार्मिक उदारता कम नहीं है। हाँ, राजनैतिक चालबाजियोंने अवश्य ही कभी-कभी अनुदारताका नंगा नाच कराया है पर साधारण मुसलमान उदार हैं। जरूरत है एक दूसरेको समझनेकी।

१३ नारी अपहरण

बहुतसे लोगोंकी शिकायत है कि मुसलमान लोग हिन्दू नारियोंका अपहरण करते हैं। अपहरणसे यहाँ फुसलाना आदि भी समझ लिया जाता है। पर इस विषयमें हिन्दू मुसलमानोंमें उन्नीस-बीसका ही अन्तर है। ऊँची श्रेणीके मुसलमान और ऊँची श्रेणीके हिन्दू दोनों ही नारी अपहरण नहीं करते। बाकी हिन्दू और मुसलमानोंमें अपहरण होता है। जिन लोगोंमें तलाकका रिवाज है और आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है उन लोगोंमें इस तरह अपहरण होते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि मुसलमान लोग मुसलमान और हिन्दू कहींसे भी अपहरण करते हैं; जब कि हिन्दू हिन्दुओंमेंसे ही—खासकर अपनी जातिमेंसे ही अपहरण करते हैं। इसका कारण हिन्दुओंका जातीय संकोच

हैं—अपहरणवृत्तिका अभाव नहीं। इसका इलाज मुसलमानोंको कोसना नहीं है, किन्तु अपनी क्षुद्र जातीयताका त्याग करना है।

हिन्दुओंमें बहुत-सी जातियाँ ऐसी हैं, जिनमें विधवाओंको दूसरा विवाह करनेकी मनाई है—ऐसी विधवाएँ जब ब्रह्मचर्यसे नहीं रह पातीं, तब वे भ्रष्ट हो जाती हैं उस समय प्रायः हिन्दू जातियोंमें उसे स्थान नहीं मिलता। तब वे राजी-खुशीसे मुसलमान होना पसन्द कर लेतीं हैं। हिन्दू लोग अगर क्षुद्र जातीयताका त्याग कर दें और विधवा-विवाहका विरोध दूर कर दें तो नारी अपहरणकी घटनाएँ न हो सकें।

फिर भी अगर कभी ऐसी घटना हुई हो जहाँ किसी नारीके साथ अत्याचार हुआ हो तो वहाँ सामान्य नारी-रक्षणकी दृष्टिसे प्रयत्न करना चाहिये। नारी अपहरणका दोष किसी जातिके मत्थे न मढ़ना चाहिये। साधारणतः यही कहना चाहिये कि इस गुंडेने या उन गुंडोंने ऐसा काम किया है।

जब तक हिन्दू मुसलमानोंके दिल साफ नहीं हैं, तभी तक यह झगड़ा है और बात-बातमें एक दूसरे पर शंका होने लगती है। इसका फल यह होता है कि जब अत्याचार गौण और जातीय-द्वेष मुख्य बन जाता है तब ऐसे लोग भी साथ देने लगते हैं जो अत्याचारसे घृणा करते हैं; किन्तु जातीय अपमान सहन नहीं कर सकते। इससे समस्या और उलझ जाती है। इसलिये ऐसी घटनाओंको जातीय रंगमें न रंगना चाहिये। सार बात यह है कि जब दोनोंके मनका मैल धुल जायगा और हिन्दू लोग अपनी जातीय-संकुचितता और पुनर्विवाहविरोध दूर कर देंगे तो नारी अपहरणकी समस्या बिलकुल हल हो जायगी। एक दूसरेके साथ घृणा प्रगट करनेसे यह समस्या हल नहीं हो सकती।

१४ छूत-अछूत

मुसलमानोंकी यह शिकायत है कि हिन्दू उन्हें अछूत समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओंमें छूत-अछूतकी बीमारी है पर इसका उपयोग वे मुसलमानोंके साथ कुछ विशेषरूपमें करते हैं यह बात नहीं है। हिन्दू भंगी चमार, बसोड़, महार आदि हिन्दुओंको जितना अछूत समझते हैं उतना मुसलमानोंको नहीं। बल्कि मुसलमानोंको अछूत समझतेही नहीं। हाँ, उनके साथ नहीं खाते-पीते। इस विषयमें मुसलमानोंके साथ घृणा नहीं की जाती। हिन्दुओंकी दृष्टिमें तो हिन्दुओंकी हजारों जातियोंके समान मुसलमान भी एक जाति है।

छूत-अछूतके प्रश्नमें हिन्दू-मुसलमानोंको मिलानेकी इतनी जरूरत नहीं है, जितनी हिन्दू-हिन्दूको मिलानेकी। इस बातको लेकर हिन्दू-मुसलिम द्वेषके लिये कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार और भी बहुतसी छोटी-छोटी बातें मिलेंगी, पर ऐसी सैकड़ों बातें तो एक माँ-बापसे पैदा हुए दो भाइयोंमें भी पाई जाती हैं। पर इससे क्या वे भाई-भाई नहीं रहते? हिन्दू-मुसलमान भी इसी तरह भाई-भाई हैं।

नासमझीसे या स्वार्थी लोगोंके बहकानेसे एक दूसरे पर अविश्वास पैदा हो रहा है और दोनों ऐसा समझ रहे हैं मानों एक दूसरेको खा जायँगे। इसी झूठे भयसे कभी-कभी एक दूसरेका सिर फोड़ देते हैं। पर क्या हजार पाँचसौ हिन्दुओंके मरनेसे या हजार पाँचसौ मुसलमानोंके मरनेसे हिन्दू या मुसलमान नष्ट हो जायँगे?

सन् १९१८ में इन्फ्लुएंजामें एक करोड़से भी अधिक आदमी मर गये थे। फिर भी जब बादमें मर्दुमशुमारी हुई तो पहिलेसे साठ लाख आदमी ज्यादा थे। उस इन्फ्लुएंजासे ज्यादा तो हम एक दूसरेको नहीं मार सकते फिर कैसे एक दूसरेको नष्ट कर देंगे।

हिन्दू सोचे कि हम मुसलमानोंको मार भगायेंगे तो यह असम्भव है। जिस दिन मुट्ठीभर मुसलमान हिन्दुस्थानमें आये उस दिन हिन्दू स्वतंत्र शासक होकर भी नहीं भगा सके और नहीं नष्टकर सके। अब आज खुद गुलाम होकर आठ करोड़ मुसलमानोंको क्या भगायेंगे? यदि मुसलमान सोचें कि हम हिन्दुओंको नेस्तनाबूद कर देंगे तो जिन दिनों उनके हाथमें हिन्दुस्थानकी बादशाहत थी उन दिनों वे हिन्दुओंको नेस्तनाबूद न कर सके, तो आज खुद गुलाम होकर वे क्या हिन्दुओंको नेस्तनाबूद करेंगे?

दोनोंमेंसे एक भी किसी दूसरेको नेस्तनाबूद नहीं कर सकता। हाँ, दोनों लड़कर आदमियतको नेस्तनाबूद कर सकते हैं। शैतान बनकर इस गुलजार चमनको दोजख बना सकते हैं।

पाकिस्तान

कुछ लोग हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ोंको निपटानेके लिये पाकिस्तानकी योजना सामने लाने लगे हैं। अगर पाकिस्तानसे भलाई होती हो तो किसीको भी उसके बनानेमें ऐतराज नहीं है। पर हिन्दू-मुसलमान इस तरह देश भरमें फैले हुए हैं कि उनकी बस्ती अलग-अलग करना असंभव है। पाकिस्तानके

भी हिन्दुओंको रहना होगा और हिन्दुस्तानमें भी मुसलमानोंको। दोनोंके स्वार्थ जैसे आज एक हैं वैसे कल भी एक रहेंगे। पर शायद उस दिन हिन्दू समझेंगे कि अब हम स्वतंत्र हैं। मुसलमान समझेंगे कि हम स्वतंत्र हैं, जब कि वास्तवमें दोनोंके दोनों गुलाम रहेंगे। कदाचित् घमंडमें आकर अल्पमत कौमको दबाना चाहें तो दूसरी जगहके लोग उसका बदला लेंगे। इस प्रकार वैर वैरको बढ़ाता जायगा। न पाकिस्तानवाले खुशहाल होंगे न हिन्दुस्थानवाले। अपने पापसे, फूटसे, अन्यायसे गुलाम रहेंगे, बर्बाद होंगे।

अन्तमें वहाँ भी मिलकर दोनोंको एक बनना होगा। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है, तो उसके लिये अभी और यहीं प्रयत्न क्यों न किया जाय? एक ही नस्लके, एक ही देशके रहनेवाले भाई सदाके लिये बिछुड़कर वैर मोल क्यों लें?

चुनाव

दोनों भाईयोंके अविश्वासका एक परिणाम यह है कि कौंसिलों आदिमें जुदा-जुदा चुनाव किया जाता है। सरकारकी यह नीति किसी तरह समझमें नहीं आती। इससे दोनों और भी अधिक बिछुड़े हैं और स्वरक्षामें भी कुछ लाभ नहीं हुआ है। अगर कहीं हमारी संख्या दस फीसदी है और हमने लड़-झगड़कर पन्द्रह सीटें ले लीं और उनको हमने ही चुना, मेम्बरोंको दूसरे लोगोंसे कुछ मतलब ही न रहा; तो इसका फल यह होगा कि जैसे हमारे पन्द्रह मेम्बर दूसरोंसे कोई ताल्लुक नहीं रखते, उसी प्रकार दूसरे पचासी मेम्बर भी हमसे कोई ताल्लुक नहीं रक्खेंगे। दसके पन्द्रह मेम्बर ले लेनेपर भी हमारा बहुमत तो हुआ नहीं और जो बहुमतके मेम्बर आये उनसे हमारी जान-पहिचान भी एक वोटरके नाते नहीं हुई। ऐसी हालतमें वे मनमानी करना चाहे तो हमारे दसके बदले पन्द्रह मेम्बर क्या कर लेंगे। इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि हम जनसंख्याके अनुसार ही अपने मेम्बर चाहें और सम्मिलित चुनाव करे। दूसरे मेम्बरोंके चुनावमें हमारा हाथ हो और हमारे मेम्बरोंके चुनावमें दूसरोंका हाथ हो। इसका परिणाम यह होगा कि हरएक मेम्बरको दोनों जातिके वोटरोंसे काम पड़ेगा। इसलिये धारासभाओंमें कट्टर मुसलमान और कट्टर हिन्दू न पहुँचकर उदार मुसलमान और उदार हिन्दू पहुँचेंगे।

अल्पमत, बहुमत तो जहाँ जिनका है वहाँ उन्हींका रहेगा, पर एक दूसरेकी

पर्वाह न करनेवाले और फूट फैलनेमें ही अपनी इज्जत समझनेवाले मेम्बर न रहेंगे। इसीमें हिन्दू मुसलमान दोनोंकी भलाई है।

उपसंहार

यह नाग-यज्ञ नाटक इसीलिये लिखा गया है कि हम इतिहाससे सबक लें। हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर एक देश और एक कौमके बनें और मनुष्यताकी ओर आगे बढ़े।

अन्तमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे अब अलग-अलग होनेकी कोशिश न करें। एक दूसरेके उत्सवोंमें, त्यौहारोंमें, धर्म-क्रियाओंमें मिलनेकी कोशिश करें। दोनों मिलकर मंदिरोंका—दोनों मिलकर मस्जिदोंका उपयोग करें, अपनेको एक ही नस्लका समझें। अन्तमें दोनों मिलकर इस तरह एक हो जाँय कि बड़ासे बड़ा शैतान भी दोनोंको न लड़ा सके।

हिन्दू-मुस्लिम मेल हुए बिना कोई भी चैनसे नहीं रह सकता। इसलिये वह कभी न कभी होकर ही रहेगा। पर हम जितनी देर लगायेंगे, उतने दिनोंतक दोजखके दुःख भोगते रहेंगे। इसलिये जल्दीसे हमें मेलकी कोशिश करना चाहिये और मेल करनेका एक भी मौका न छोड़ना चाहिये।

सत्याश्रम, वर्धा. —दरबारीलाल सत्यभक्त

—२६-९-१९४०

कथावस्तु

नाग-यज्ञकी कथा महाभारतके आदिपर्वमें दी गई है। महाभारतकी कथामें कुछ पौराणिक ढंग है इसलिये वह कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण और अस्वाभाविक बन गई है। नाटकमें उस भागको स्वाभाविक रूप दिया गया है, साथही मनोवैज्ञानिक चित्रणभी कुछ विशेष किया है।

स्थानाभावसे, और कुछ अनावश्यक होनेसे भी, महाभारतकी कथा यहाँ ज्योंकी त्यों नहीं दी जाती, सिर्फ कुछ बातोंका खुलासा किया जाता है जिससे पाठक समझ सकें कि महाभारतके कथानकमें और नाटकके कथानमें क्या अन्तर है और जो परिवर्तन किया गया है, वह कितना उचित है—

१—महाभारतमें नागोंका वर्णन कहीं एक दिव्य प्राणीके रूपमें आया है जो इच्छानुसार कीट, पतंग, मनुष्य सर्प आदि वेष धारण करते हैं—कहीं साधारण साँपोंके रूपमें आया है। पर इस नाटकमें नागवंशको मनुष्यवंश मान लिया गया है, उन्हें सर्प नहीं माना गया। क्योंकि उनका शादी-व्यवहार आर्योंके साथ हुआ है, उससे मनुष्य-सन्तान पैदा हुई है—उनकी राज्य-व्यवस्था बोलचाल मनुष्यों-सरीखी है। नागयुवक परीक्षितके दरबारमें आर्य ऋषिके वेशमें गये हैं। इससे उनका हर तरह मनुष्य होना निश्चित है। इसलिये नागयज्ञमें जो नाग जलाये गये, वे नाग नामक जातिके मनुष्य थे, साँप नहीं।

२—आर्य और नागोंका झगड़ा काफी पुराना था और ऐसा मालूम होता है कि आर्य बहुत पहिलेसे चाहते थे कि नाग लोगोंको पशुओंकी तरह यज्ञमें जिंदा जलाया जाय। जनमेजयके पूछनेपर ऋत्विकोंने कहा कि 'पुराणोंमें नाग-यज्ञ नामक एक महान यज्ञ है, देवताओंने आपहीके निमित्त उस यज्ञको रचा है। पौराणिक लोग कहते हैं कि आपके बिना कोई दूसरा राजा उस महायज्ञका अनुष्ठान न कर सकेगा। हे महाराज, हम लोग भी उसके नियमोंसे परिचित हैं।'

इससे पता लगता है कि नागयज्ञका कार्यक्रम पुराना था। और उसका विधान भी बन चुका था, परन्तु जनमेजयके पहिले इतनी क्रूरता और कोई नहीं दिखा सका था।

३—महाभारतके अनुसार हजारों-लाखों नाग मंत्रसे खींचकर बुलाये जाते थे और आगमें डाले जाते थे। सैकड़ों कोसोंसे पकड़कर आगमें डालनेकी शक्ति मुँहसे निकले शब्दमें है यह इतिहास या विज्ञानके अनुसार नहीं है। इससे सिर्फ इतना ही पता लगता है कि नाग लोगोंसे युद्ध नहीं किया जाता था किन्तु किसी उपायसे उन्हें पकड़ा जाता था। यह उपाय नागबस्तियोंपर छापा मारनेके सिवाय और कुछ नहीं मालूम होता इसलिये नाटकमें इसे ही लिया गया है।

४—महाभारतमें जरत्का नाम जरत्कारु है और उनकी पत्नीका नाम भी जरत्कारु है। इस नाम-साम्यका न तो उचित कारण है न इसकी उपयोगिता; इसलिये नाटकमें पतिका नाम जरत् और पत्नीका नाम कारु बना दिया गया है। इस प्रकार जरत्कारु एक व्यक्तिका नहीं दम्पतिका नाम बन गया है।

५—महाभारतमें जरत् ऋषि क्रोधी और घमंडी हैं। पत्नीको गर्भवती छोड़कर और उसका तिरस्कार करके चले गये हैं। नाटकमें जरत् विनीत और लोकसेवी चित्रित किये गये हैं और लोकसेवामें ही उनके जीवनका अन्त दिखलाया गया है।

६—आर्यावर्त और त्रिविष्टपके सम्बन्धमें नाटकमें कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डाला गया है या शास्त्रोंके पौराणिक रूपको ऐतिहासिक सरीखा स्वाभाविक बनाया गया है।

इस प्रकारके कुछ और छोटे-छोटे परिवर्तन किये गये हैं। कड़ी जोड़नेके लिए तथा बातको साफ करनेके लिये कुछ साधारण पात्र नये भी लिये गये हैं।

हाँ, मूल कथानकमें ऐतिहासिक दृष्टिसे जो सार ग्रहण करने योग्य है उसमें कोई अन्तर नहीं आने दिया गया है।

द. ला. सत्यभक्त

समर्पण

नागयज्ञ-विरोधक ऋषिकुमार

श्री आस्तीक मुनिकी

सेवामें

ऋषिवर,

एकही देशमें रहनेपर भी सहज वैरीकी तरह परस्पर लड़नेवाले आर्य और नागोंके दिलोंमें आपने जो प्रेमका बीज बोया वह समय पाकर खूबही फला-फूला, इस देशमें एक संस्कृति, एक धर्मका निर्माण हुआ। पर आज वैसीही परिस्थिति फिर आगई है; हिन्दू और मुसलमान एकही नस्लके और एकही देशके होकर भी आपसमें शत्रु बने हुए हैं और इसीसे गुलामीके जालमें फँसे हुए हैं। इनको इतिहाससे कुछ सबक सिखानेके लिये आप बहुतही योग्य गुरु हैं। इसलिये यह नाटक, जो आपके और आपके माता-पिताके जीवनकी सफलताकी कहानी है, आपकी सेवामें अर्पण करता हूँ।

आपकी मानवताका पुजारी—

दरबारीलाल सत्यभक्त

—❀ नाटकके पात्र ❀—

पुरुष-पात्र

१ परीक्षित...	आर्यसम्राट्
२ जनमेजय...	परीक्षितके पुत्र, आर्यसम्राट्
३ शमीक...	एक आर्य ऋषि
४ जरत्...	एक आर्य ऋषि
५ आस्तीक...	जरत् ऋषिके पुत्र; नागयज्ञ बन्द करानेवाले
६ वासुकि...	नाग लोगोंके राजा
७ तक्षक...	वासुकिके भाई
८ शृङ्गी...	शमीक ऋषिके पुत्र
९ इन्द्र...	त्रिविष्टपके सम्राट्
१० चण्डभार्गव ११ देवशर्मा १२ पिंगल	यज्ञ करानेवाले ऋषि
१३ गौरमुख १४ कुश	शमीक ऋषिके शिष्य

स्त्री-पात्र

१५ कारु—वासुकिकी बहिन, जरत्की पत्नी, आस्तीककी माता।

इसके अतिरिक्त मंत्री, पथिक-दम्पति और उनके पुत्र-पुत्री, अन्य पथिक, युवकदल, द्वारपाल, कारु की सखियाँ, नर्तिकाएँ और सभासद।

नाग-यज्ञ

[पहिला अंक]

गीत १

(पटोत्थान—मङ्गलगान)

आओ मनुष्य बन जावें, गावें मनुष्यताका गान
हम भूलें गोरा-काला।
जग हो न रंग-मतवाला।
हम पियें प्रेमका प्याला।
हम देखें मनका रंग और मुखके ऊपर मुसकान।
आओ मनुष्य बन जावें, गावें मनुष्यताका गान ॥१॥
हम जातिपाँति सब तोड़ें।
हम सबसे नाता जोड़ें।
हम मत-मदान्धता छोड़ें।
हों आर्य; नाग या देव; द्रविड़, सबका हो एक निशान।
आओ मनुष्य बन जावें, गावें मनुष्यताका गान ॥२॥
हमने मानव-तन पाया।
पर मानवपन न दिखाया।
औदार्य विवेक गँवाया।
हम मनुष्यताके बिना बने पंडित पूरे नादान।
आओ मनुष्य बन जावें, गावें मनुष्यताका गान ॥३॥
हो सारा विश्व हमारा।
सबसे हो भाईचारा।
हम चलें प्रेमके पंथ, प्रेमका हो घर-घर सम्मान।
आओ मनुष्य बन जावें, गावें मनुष्यताका गान ॥४॥

पहिला दृश्य

[वनमें मुनि शमीक बैठे हैं। राजा परीक्षितका धनुष-बाण लिए हुए प्रवेश]

परीक्षित—ब्रह्मन्, बाण खाया हुआ कोई मृग यहाँसे निकला है?

(मुनि मौनव्रती होनेसे कोई उत्तर नहीं देते)

ब्रह्मन्, क्या आपने मेरा कहना नहीं सुना? मैं राजा परीक्षित हूँ और पूछ रहा हूँ कि कोई बाण खाया हुआ मृग यहाँसे निकला है?

नहीं सुनते आप। मेरा अपमान कर रहे हैं। क्या आपके मुँह नहीं है? गला नहीं है? या गला रुँध गया है? किसीने गला जकड़ दिया है?

(पासमें एक मरा हुआ सर्प दिखाई देता है उसे देखकर)

ठहरिये, अभी तक आपका गला जकड़ा हुआ नहीं है, पर अब मैं जकड़े देता हूँ। जिस गलेसे आवाज़ ही नहीं निकलती उसके रहनेका क्या उपयोग है?

(मरे हुए सर्पको बाणसे उठाकर मुनिके गलेमें डाल देता है और चारों तरफ़से लपेटकर राजा चला जाता है। कृश नामका एक तापसकुमार छुपे-छुपे ये सब कार्य देख रहा था; पर डरपोक होनेसे आगे न आ सका था। राजाके चले जानेपर निकल आता है)

कृश—धत् तेरे राजाकी, राजा है कि राक्षस? हमारे गुरुजीके गलेमें साँप डाल दिया। अरे गुरु जी, गुरु जी, गलेमें सांप लिपट गया है, मौन-व्रत छोड़िये। साँप निकाल फेंकिये। अच्छा, आप नहीं निकालते तो मैं ही निकाल देता हूँ। (पास जाकर) अरे बापरे काला है काला। कहीं ज़िन्दा निकला या मेरे हाथ लगानेसे ज़िन्दा हो गया तो? ना, ना, मैं हाथ नहीं लगाता। कहीं ज़िन्दा हो गया तो हमारे गुरुजीको ही डस लेगा। अब तो शृंगी भैयाको ही समाचार देना चाहिये।

[प्रस्थान और पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

[एक तरफ़से शृंगीका प्रवेश और दूसरे तरफ़से कृश का प्रवेश। कृश दौड़ता हुआ आता है और हाँफता-हाँफता कहता है—]

शृंगी भैया, शृंगी भैया, ग़ज़ब हो गया।

शृंगी—क्या हो गया रे !

कृश—कुछ मत पूछो ! गुरुजीके गलेमें साँप ! बड़ा भारी ! काला !

शृंगी—कैसे पहुँचा ?

कृश—पहुँचा नहीं, पहुँचाया गया। साँपकी क्या ताक़त थी, जो मेरे रहते गुरुजीके गलेमें पहुँच सके।

शृंगी—फिर किसने पहुँचाया ?

कृश—एक राजाने। राजा क्या राक्षस था। मूर्ख, दुष्ट, क्रूर, गधा, घोड़ा, उल्लू।

शृङ्गी—पर तूने उसका नाम नहीं पूछा ?

कृश—नाम ! मैं, उसका नाम पूछता ? ऐसे नीच राक्षससे मैं बात करना भी पसन्द नहीं करता। क्या उसका इतना पुण्य था कि मुझ सरीखा ऋषि उससे बातें करता ?

शृङ्गी—चल-चल, रहने दे अपना ऋषित्व ! डरके मारे निकला भी नहीं गया और इधर अपना ऋषिपन बघारता है।

कृश—अच्छा डर ही सही, डर ही सही, डर भी चार संज्ञाओंमें आहार, निद्रा की तरह एक संज्ञा है। वह कोई बुरी चीज़ नहीं है। ख़ैर, मैंने अपनी चतुराईसे उसका नाम तो जानही लिया।

शृङ्गी—कैसे जाना ?

कृश—वह गुरुजीसे कह रहा था—ब्रह्मन्, मैं राजा परीक्षित हूँ और पूछता हूँ कि कोई बाण खाया हुआ मृग यहाँसे निकला है ? बस मैंने उसका नाम जान लिया और तभीसे इस चतुराईके साथ उसकानाम रट रहा हूँ कि अभी तक याद है।

कृश—हरिणकी बात उसने पूछी, मगर गुरुजीका मौनव्रत था इसलिये वे बोले नहीं। वह दुष्ट राजा बोला—मालूम होता है कि तुम्हारा गला रुँध गया है अगर न रुँधा हो तो मैं रुँध देता हूँ। ऐसा कहकर उसने बाणसे एक मरा हुआ सर्प उठाया और गुरुजीके गलेमें लपेट दिया।

शृङ्गी—हुँ, यह बात ! इतना राज-मद ! ऋषिका इतना अपमान ! इसके बदले उसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा।

कृश—ज़रूर हमारे गुरुजीके गलेमें साँप डालकर क्या पानीसे ही हाथ धोता रहेगा ? उसे प्राणोंसे हाथ धुलवाना ही चाहिये।

श्रृङ्गी—अच्छा, तू घर आ। मैं जरा बाहर जाता हूँ।

(दोनोंका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[नागोंकी सभा—नागराज वासुकी की अध्यक्षतामें तक्षक आदि नाग-नेता बैठे हैं नागकन्याएँ गातीं हैं]

गीत २

हमने निश्चल प्रण ठाना है।
हमको स्वतन्त्र बन जाना है॥
पृथ्वीका भार हटायेंगे।
दुश्मनका रक्त बहायेंगे।
हम मारेंगे मर जायेंगे।
पर वश न किसीके आयेंगे।
मिटना है या मिटाना है।
हमको स्वतन्त्र बन जाना है।
दुश्मनका नाम मिटायेंगे।
या अपने प्राण गँवायेंगे।
हम ऐसा खेल खिलायेंगे।
उनके सिर गेंद बनायेंगे।
प्राणोंकी होड़ लगाना है।
हमको स्वतन्त्र बन जाना है॥
अपना अधिकार न छोड़ेंगे।
जंजीर हाथकी तोड़ेंगे।
दुश्मनका गला मरोड़ेंगे।
अथवा उसका सिर फोड़ेंगे।
हमको मनुष्य कहलाना है।
हमको स्वतन्त्र बन जाना है।

वासुकी—भाइयो, आर्योंको इस देश में आये सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये। वे यहाँ पर घर बनाकर बस गये हैं अनेक कठिन अवसरों पर हमने उन्हें मदद की है। पर आज भी आर्योंके अत्याचार बन्द नहीं हुए हैं। उन लोगोंने जातीय दृष्टिसे हमें नीच मानने की धृष्टता की है। वे लोग अपने संगठित पशुबलके कारण ऐसे उन्मत्त हो गये हैं कि उनकी मनुष्यता नष्ट हो गई है। वे इस देशमें आये हैं, बस गये हैं तो बसे रहें। पर वे हमारे बराबर ही बैठ सकते हैं सिरपर नहीं। वे अगर सिरपर बैठनेकी कोशिश करेंगे तो हम उन्हें जमीनपर गिराकर कुचल देंगे। इसके लिये हमें दो काम करना है। पहिला तो यह कि हम संगठित, बलवान और निर्भय बनें। दूसरा यह कि आर्योंको सभ्यताका पाठ पढ़ावें। सभ्यता, धर्म और सामाजिकता की दृष्टिसे जब तक नाग और आर्य एक नहीं हो जाते, तबतक न चैनसे वे रह सकते हैं न चैनसे हम रह सकते हैं। यह ठीक है कि उन्हें अपनी सभ्यताका घमंड है, पर वह दिन दूर नहीं जब सब अपनी-अपनी सभ्यताका घमंड छोड़कर एक नई सभ्यताका निर्माण करेंगे। उस सुदिनको देखनेके लिये हमें दृढता और धैर्यके साथ प्रयत्न करना चाहिये।

तक्षक—आपका कहना ठीक है। सभ्यताका एकीकरण हम भी चाहते हैं; पर मुझे विश्वास नहीं कि मदान्ध आर्य लोग इस काममें हमारे साथ सहयोग करेंगे। हम लोगोंने हर समय उनके साथ सहयोग करनेकी चेष्टा की; पर बदलेमें अपमान, तिरस्कार और अत्याचार ही पाया। महाभारतके युद्धके समय हजारों नागोंने अपने प्राण बहाये पर नाग-जातिके ऊपर कैसे अत्याचार हो रहे हैं वह सब हम दिन-रात देखते हैं। अब हम चुम्बन लेनेके बदले उनका खून चूसेंगे।

वासुकी—भाइयो, स्वतन्त्रताके लिये हम सब मरनेको तैयार हैं और जो जाति मरना जानती है उसे कोई नहीं मार सकता। फिर भी इस वस्तुस्थिति को हमें भूलना नहीं चाहिये कि आर्य लोग काफी बलवान हैं। महाभारतकी क्षति उनने जल्दी ही पूरी करली है। अब तो वे देवोंसे भी नहीं डरते। बलसे वे उन्मत्त होकर देवों की भी अवहेलना करते हैं। अब हम न तो उन्हें मार सकते न अपने देशसे निकाल सकते हैं। इतना ही कर सकते हैं कि हम बराबरीके साथ बैठ सकें और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित कर एक जातीयता का निर्माण कर सकें।

तक्षक—निर्बलतासे एक-जातीयता का निर्माण न होगा। जब हम उन्हें क्षणभर चैन न लेने देंगे, तब उन्हें अपनी मित्रता की क़ीमत मालूम होगी तभी एकता होगी। आज तो हमारा काम उन्हें परेशान करना है—उनका रक्त बहाना है।

एक नागयुवक—हम लोग छलसे, बलसे आर्योंको नष्ट करें, यही उत्तम है। आर्य राजा का सिंहासन ऐसा कण्टकाकीर्ण बना दें कि उस पर कोई वर्षों तो क्या, महीनों न बैठ सके। तभी वे लोग नागजातिकी मित्रताका मूल्य समझेंगे।

दूसरा युवक—हम लोगोंको ऐसा युवकदल संगठित करना चाहिये, जो षड्यंत्रोंसे आर्य राजा की, उसके क्षत्रपों की और खास-खास राज्य-संचालकों की हत्या करे।

तक्षक—मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ और इस कार्यके लिये आगे होकर काम करनेको तैयार हूँ।

दूसरा युवक—श्रीमान तक्षक महोदय की अध्यक्षता में यह कार्य किया जाय।

वासुकि—आप लोग जो करना चाहें अवश्य करें। उस कार्यको मेरा आशीर्वाद है और सहयोग है पर सांस्कृतिक एकता की बात भूल न जायें।

[द्वारपालका प्रवेश]

द्वारपाल—महाराज शमीक ऋषिके पुत्र शृङ्गी आये हुए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।

तक्षक—क्या बुरे समय पर आया। अभी उसे यहाँ आनेकी आवश्यकता नहीं है।

वासुकि—पर यह तो जान लेना चाहिये कि वे किस मतलबसे आये हैं! नागजातिकी सभामें आर्य ऋषि भिक्षा माँगने तो आये नहीं होंगे। उसका कोई न कोई गूढ़ आशय अवश्य होगा। इसलिये बुलाने में क्या हानि है?

तक्षक—न जाने किस छलसे यहाँ आया होगा।

वासुकि—आर्य लोग घमंडी होते हैं पर छली नहीं। अगर वे छल भी करें तो छल करनेमें नागजातिसे पार नहीं पा सकते।

तक्षक—अच्छा तो आने दीजिये।

(शृङ्गी ऋषिका प्रवेश, एक आसन पर बैठ जाते हैं)

वासुकि—कहिये ब्रह्मन्, किसलिये पधारना हुआ ?

शृङ्गी—राजा परीक्षितके अत्याचार प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं, मैं उस अत्याचारीका नाश करना चाहता हूँ।

वासुकि—ब्रह्मन्, आप लोग तो आर्य ऋषि हैं। आपको अत्याचारों की क्या चिन्ता ? चिन्ता तो हम नाग लोगोंको है। सिर्फ नाग कहलानेके कारण अत्याचारकी चक्कीमें दिन-रात पीसे जाते हैं।

शृङ्गी—नागराज, आप भूलते हैं। व्यक्ति और मनुष्यके बीचमें आर्य, नाग, द्रविड़ आदि भेद कोरी कल्पनाएँ हैं। जो व्यक्तिने स्वार्थ-सिद्धिके लिये बना ली हैं। व्यक्ति जब दूसरे व्यक्तियोंको खा जाना चाहता है और मुँह छोटा होनेसे खा नहीं पाता, तब वह एक गिरोह बनाता है। उन साथियोंके बलपर ही वह दूसरोंको खाता है। इसी गिरोहका नाम है जाति। दूसरे लोगोंको खा चुकनेके बाद वह अपने गिरोहके साथियोंको खाने लगता है। सत्ता और शक्तिके आजाने पर वह अपने और पराये किसीको नहीं छोड़ता।

वासुकि—ब्रह्मन्, आपका कहना है तो तीखा, पर सत्य है। व्यक्तिने जातीयताके नामपर जो मुँह फैलाया है उससे वह भयंकर और विशाल जानवर बन गया है। वह जातीयताके सहारे अत्याचारी होने पर भी अदम्य बन गया है।

शृङ्गी—पर अत्याचारको मरना पड़ेगा और उसके साथ अत्याचारीको भी नष्ट हो जाना पड़ेगा।

वासुकि—जब आप सरीखे ऋषि अत्याचारके विरुद्ध खड़े हो जाँयगे तब अत्याचार की क्या शक्ति है जो जगतमें रह सके। हम लोगोंके योग्य कोई सेवा हो तो आप निःसंकोच कह सकते हैं।

शृंगी—मैं राजा परीक्षितसे अपने पिताजीके अपमानका बदला लेना चाहता हूँ।

वासुकि—आपके पिताजी ! वे तो एक महान् ऋषि हैं और आर्योंके पक्षके प्रचंड समर्थक हैं। ब्रह्मन्, उनका कैसे अपमान किया गया ?

शृंगी—उनके मौन-व्रतसे चिढ़कर परीक्षितने उनके गलेमें साँप डाल दिया।

वासुकि—हर-हर हर-हर ! यह कैसी निर्दयता ! सर्पने ऋषिराजको कोई हानि तो नहीं पहुँचाई ?

शृंगी—सर्प मरा था।

वासुकि—ओह, अब तो यह कार्य केवल अपमानकी दृष्टिसे ही किया गया। जीवित सर्प डाला होता तो यह भी कहा जा सकता था कि परीक्षितने ऋषिराजकी परीक्षा करनेके लिए ऐसा किया। पर मृत सर्प डालनेसे तो ऋषिराजका अपमान ही हुआ है।

तक्षक—जैसे मृत सर्पको लोग घूरे पर फेंक देते हैं, उसी प्रकार परीक्षितने मृत सर्प ऋषिराज पर डाल दिया।

वासुकि—ऋषिराजको घूरेके समान समझना परीक्षितकी मदान्धता है।

शृंगी—उस मदान्धताको मिट्टीमें मिलानेके लिये मैं आप लोगोंके पास आया हूँ।

तक्षक—हम लोग सेवाके लिये तैयार हैं।

शृंगी—तो देखिये, परीक्षितकी सभामें चलकर आपको उसका वध करना होगा।

तक्षक—हम प्राण देकर भी उसका वध करनेको तैयार हैं। परन्तु परीक्षितकी सभामें पहुँचना बड़ा कठिन है।

शृंगी—इसकी आप चिन्ता न कीजिये। मैं आपके साथ रहूँगा। आप लोग ऋषिकुमारके वेषमें मेरे साथ रहें। वार्तालापके प्रसंगमें अवसर पाकर आप उसका वध करें। वधका उत्तरदायित्व मैं अपने सिर पर ले लूँगा।

तक्षक—धन्य है!

शृंगी—अच्छा तो मैं चलता हूँ। आप लोग तैयारी करके मेरे आश्रममें आइये। तब तक मैं भी तैयारी कर लूँ।

(ऋषिका प्रस्थान)

तक्षक—अच्छा हुआ। काँटेसे काँटा निकल जायगा।

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(ऋषि शमीक और उनके शिष्य कृशका प्रवेश)

शमीक—वत्स, अभी तक शृंगी नहीं आया कई, दिन हो गये। मुझसे बिना मिले ही चला गया।

कृशा—मैंने बहुत कहा कि गुरुजीके दर्शन तो कर लो, पर उनके ओठ फड़कने लगे और हुँकार कर बोले—हुँ, इतना राजमद !. अब इसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेंगे। गुरुजी, मैं तभीसे सोच रहा हूँ कि प्राणोंसे हाथ कैसे धोये जाते होंगे ? पानीसे हाथ धोनेकी बात तो मुझे मालूम है पर प्राणोंसे हाथ ! बड़े अचरजकी बात है। गुरुजी, जब वह राजा प्राणोंसे हाथ धोवेगा तब मैं देखने जाऊँगा।

शमीक—चुप रह, क्या अपशकुनकी बात बकता है ! जरा देख-तो, वह दूरसे कौन आता दिखाई देता है ! मुझे तो शृंगी ही मालूम होता है।

कृशा—हाँ, हाँ, शृंगी दादा ही तो हैं। चलो अच्छा हुआ अब दादासे प्राणोंसे हाथ धोनेकी बात पूछूँगा।

(शृंगीका प्रवेश, शमीकको प्रणाम)

शमीक—बेटा, कितने दिन लगा दिये ! आखिर कहाँ गया था।

शृंगी—नागराज वासुकिके यहाँ।

शमीक—सो किसलिये ?

शृंगी—अपने पिताके अपमानका बदला चुकानेके लिये।

शमीक—धन्य है बेटा, तुझे ऐसा ही चाहिये। इन नागोंने आर्योंको परेशान कर रक्खा है। ये लोग आर्य राजाओंको चैनसे राज्य भी नहीं करने देते। आर्य ऋषियोंको चुपचाप बैठने भी नहीं देते।

शृंगी—जी हाँ, और जब आर्य ऋषि मौनमें रहते हैं, तब उन्हें पचासों गालियाँ देकर उनके गलेमें मरा साँप डाल जाते हैं।

शमीक—बेटा, तू उस बातका विचार मत कर। राजा परीक्षितको मेरे मौन व्रतका पता नहीं था, इसीलिये उससे वह भूल हो गई।

शृंगी—यह भूल नहीं, राजमद है ब्राह्मणका इतना अपमान ! मैं इसका बदला लिये बिना न रहूँगा।

शमीक—तो नागोंके यहाँ किसलिये गया था ?

शृंगी—कहा न मैंने ! बदला लेनेके लिये। मैं नागोंसे मिलकर परीक्षितका वध कराऊँगा। नागराज तक्षक स्वयं अपने हाथोंसे उसका वध करेंगे।

शमीक—हरे-हरे, हरे, बेटा, तू यह क्या करता है ! राजाका वध ! वो भी एक नागके हाथसे ! और वह भी ब्राह्मणकी सहायतासे ! बेटा ऐसा अनर्थ

नष्ट कर । फिर तो नाग लोग आर्योंको जिन्दा न रक्खेंगे । आर्य ऋषियोंको यहाँ रहना असम्भव हो जायगा ।

शृंगी—पिताजी, मैं समझता हूँ जो ऋषि राजाओंकी तलवारके भरोसे जिन्दा रहते हैं वे ऋषि कहलानेके योग्य नहीं । ऋषियोंका बल प्रेम और सेवा है, तलवार नहीं ।

शमीक—पर हम लोग तो सभीसे प्रेम करते हैं ।

शृंगी—हाँ, सभीसे करते हैं, पर नागोंसे नहीं । नाग क्या मनुष्य नहीं है !

शमीक—पर वे हमसे सेवा लेना ही नहीं चाहते, हमारे प्रेमकी कीमत ही नहीं करते तो हम क्या करें !

शृंगी—सेवा लें कैसे ! आप तो सेवाके नाम पर उन्हें पीसना चाहते हैं, प्रेमके नाम पर पचाना चाहते हैं। आप उन्हें गुलाम समझ कर व्यवहार करते हैं पर कभी उन्हें प्रेमसे आशीर्वाद दिया है ! उनके देशमें आकर हम सैकड़ों वर्षोंसे बसे हुए हैं फिर भी उससे घृणा करते हैं उनके धर्मसे घृणा करते हैं, उनकी सभ्यतासे घृणा करते हैं, क्या इसीका नाम प्रेम है !

शमीक—पर उन्हें आर्य सभ्यताके उच्च आदर्श पर लानेके लिये प्रयत्न तो करना ही चाहिये। आर्य सभ्यता और और आर्य-धर्म की महत्ताको भुलाया नहीं जा सकता ।

शृंगी—तब वे लोग नाग-सभ्यता और नाग-धर्म को कैसे भुलावेंगे ! हम उनके घरमें आकर भी चीज़ नहीं भुलाना चाहते तो वे अपने घरमें रहते हुए अपनी चीज़ कैसे भुला देंगे !

शमीक—पर जब अपनी चीज़ अच्छी है तो वह दूसरोंको लेना ही चाहिये। भला पत्थरोंको पूजनेवाले, योनि और लिंग की स्थापना करके उसे शिव कहनेवाले, सर्पोंको देवता समझने वाले नाग लोगोंकी सभ्यता भी कोई सभ्यता है ! उनका धर्म भी कोई धर्म है !

शृंगी—और घी वगैरह पौष्टिक और स्वादिष्ट पदार्थोंको अग्निमें जला डालनेकी मूर्खता भी कोई धर्म है ! योनि और लिंग तो प्रकृति और परमात्मा का रूपक है। आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों दृष्टियोंसे वह आदर्श है। उसकी पूजामें क्या बुराई है ! योनि और बीजसे ही जगत है। तब वह शिव या कल्याणरूप न कहा जाय तो क्या कहा जाय ! पत्थर हो या मिट्टी जब तक मनुष्यके पास हृदय है, तबतक उसे पूजाके लिये कोई न कोई आधार

कलाका ही पड़ता है। चित्र देखकर जब हमारे हृदय पर प्रभाव पड़ता है तब मूर्ति देखकर क्यों न पड़ेगा? पिताजी, नाग-धर्म और नागसभ्यतामें भी ऐसी चीजें है जो हमें लेना चाहिये, और अपनी सभ्यता और अपने धर्ममें भी ऐसी चीजें हैं जो उन्हें लेना चाहिये। जब हमारा दावा है कि हमारी अच्छी चीज़ उन्हें लेना ही चाहिये। तब उनकी अच्छी चीज़ हमें लेना ही चाहिये ऐसा दावा भी क्यों न हो!

शमीक—बेटा, तब तो तुम आर्य-धर्म और आर्य-जातिको डुबा दोगे।

शृंगी—डूबना ही चाहिये। जब हम दूसरोंकी सभ्यता और धर्मको डुबानेकी चेष्टा कर रहे हैं तब हमारी सभ्यता और धर्म भी डूबेंगे। भविष्यमें इस देशमें न आर्य रहेंगे, न नाग रहेंगे। भारतीय रहेंगे। न वहाँ आर्यधर्म रहेगा न नागधर्म रहेगा। आर्य और नागोंके सब देव ईश्वरके नाना रूपोंकी तरह माने जाकर एकरूप हो जायेंगे। हम सब मिलकर उन सबको पूजेंगे।

शमीक—बेटा, अब कलियुग है सो सब कुछ होगा। अभी तो तू इतनी बात मान कि राजा परीक्षितका वध मत कर।

शृंगी—मैं अपने पिताके अपमानका बदला अवश्य लूँगा।

शमीक—तेरा पिता तो मैं हूँ। जब मैं उसे क्षमा कर रहा हूँ, तब तुझे क्षमा करनेमें क्या आपत्ति है?

शृंगी—तुम क्षमा कर सकते हो करो, पर मेरे पिताका अपमान मैं क्षमा नहीं कर सकता।

शमीक—तो क्या मैं तेरा पिता नहीं हूँ?

शृंगी—हो, तुम शमीक ऋषि भी हो और पिता भी हो। तुम शमीककी हैसियतसे परीक्षितको क्षमा कर सकते हो पर मेरे पिताकी हैसियतसे क्षमा करनेका आपको कोई अधिकार नहीं है। मेरे पिता मेरी वस्तु हैं। उनका अपमान मेरा अपमान है। इसका बदला मैं लेकर रहूँगा।

(उत्तेजनाके साथ चला जाता है।)

शमीक—हा भगवन्! क्या अनर्थ होनेवाला है? सम्भवतः परीक्षित अपने पापका फल भोगे बिना न रहेगा। बेटा कृश, तू अभी इन्द्रप्रस्थ चला जा, परीक्षितसे कह दे कि नाग लोग तेरा वध करना चाहते हैं। तू सँभलकर रह, मेरा आशीर्वाद भी कह देना।

कृश—गुरुजी, मैं तो दादाके साथ जाना चाहता हूँ मुझे वहाँ नागोंसे हाथ धोना देखना है।

शमीक—चुप रह मूर्ख, तुझे पहिले ही जाना पड़ेगा, और अभी! बोल, जायगा कि नहीं?

कृश—जाऊँगा। [मुँह बनाता है]

[दोनोंका प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

[राजा परीक्षित की सभा]

गीत ३

हम परम अभय, कृतविश्वविजय, हैं वीर आर्य संतान।
हम भूतलपर गिरि नगर-नगर फहराते विजय निशान ॥ १ ॥
हम पूज्य आर्य।
कृत सुकृत-कार्य।
हमने जीते सारे अनार्य ॥
गंधर्व, देव, किन्नरी-वृंद, गा रहे हमारा गान।
हम परम अभय, कृतविश्वविजय, हैं वीर आर्य संतान ॥ २ ॥
जीता त्रिलोक।
बे-रोक-टोक।
अरियोंके घर छा दिया शोक ॥
अरिकरि-कुम्भस्थल कर विदीर्ण गर्जे हैं सिंह समान।
हम परम अभय, कृतविश्वविजय, हैं वीर आर्य संतान। ॥३॥
भूमण्डल पर।
थल पर, जल पर।
हिम विन्ध्याचल त्रिदशाचलपर।
निर्बाध चलेंगे, कौन हमारा रोक सके उड़ान।
हम परम अभय, कृतविश्वविजय, हैं वीर आर्य संतान ॥ ४ ॥

परीक्षित—"निर्भय चलेंगे; कौन हमारा रोक सके उत्थान" वाह! कैसा सुन्दर गान है!—मन्त्री! यह गीत कोरी प्रशंसा ही नहीं है, इसकी एक-एक पंक्ति सत्य है।

मंत्री—नरनाथ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे पूर्वजोंने खूनका पानी बनाकर जिस उपवनको बनाया था, उसके सुफल चखनेके लिये एक चतुर माली की तरह उस बाग़को आपने पानी दिया है और कुशकंटक उखाड़कर नष्ट कर दिया है। उपवनको नष्ट करने वाले जंगली जानवर प्राणोंके भयसे मारे-मारे फिरते हैं।

परीक्षित—नाग लोग सिर उठानेकी चेष्टा कर रहे हैं अवश्य, पर इस प्रयत्नमें उन्हें नामशेष हो जाना पड़ेगा।

मंत्री—जब चीटियों की मौत आती है, तब उनके पर उगते हैं।

[परीक्षित उच्च स्वरसे हँसते हैं। द्वारपालका प्रवेश]

द्वारपाल—महाराज, शमीक ऋषिके दो शिष्य द्वारपर खड़े हैं वे आपके दर्शन करना चाहते हैं।

परीक्षित—अच्छा, शमीक ऋषिने क्या शिष्योंके मुख द्वारा शाप भेजा है! पर देर बहुत की।

मंत्री—कैसा शाप महाराज?

परीक्षित—मैं एक दिन शिकारको गया था। तब शमीक ऋषिके आश्रम में पहुँचकर मैंने उनसे बीसों बार प्रश्न पूछा, पर उनने उत्तर भी नहीं दिया। तब मुझे क्रोध आ गया और मैं उनके गलेमें एक मरा साँप डाल कर चला आया।

मंत्री—महाराज, यह बहुत बुरा हुआ।

परीक्षित—पर उसका घमंड तो देखो। एक सम्राट् उसके यहाँ जाता है, पर वह बात भी नहीं करता।

मंत्री—महाराज, इसका कोई दूसरा कारण भी हो सकता है।

परीक्षित—अच्छा देखा जायगा। द्वारपाल, उन दोनोंको आने दो।

[शमीक ऋषिके शिष्य गौरमुख और कृश का प्रवेश]

गौरमुख—महाराज, एक गुप्त और महत्वपूर्ण समाचार कहनेके लिये गुरुदेवने हमें आपके पास भेजा है।

परीक्षित—ऋषिवर ने शाप न भेज कर समाचार भेजा!

गौरमुख—गुरुदेवको विश्वस्त सूत्रसे समाचार मिला है कि नागलोग आपके वधके लिये षड्‌यंत्र रच रहे हैं। नागराज तक्षक थोड़े ही दिनोंमें अपने हाथसे आपका वध करना चाहता है, इसलिये गुरुदेवने आपको सतर्क रहनेके लिये कहला भेजा है।

मंत्री—यह ऋषिराज की कृपा है कि अपने अपराधी राजाके कल्याणके लिये वे इतने सतर्क हैं।

कृश—नहीं तो क्या ? नागलोग चाहते हैं कि महाराजको प्राणोंसे हाथ धोना पड़े, जब कि हमारे गुरुजी चाहते हैं कि आप पानीसे ही हाथ धोवें।

मंत्री—आपके गुरुजी धन्य हैं।

गौरमुख—गुरुदेवने यह भी कहा है कि जिस दिन महाराज आश्रममें आये थे उस दिन मेरा मौन दिवस था और मैं विचारमें लीन था। इसलिये बात भी नहीं कर सकता था। नासमझीसे महाराजने जो मेरे गलेमें साँप डाल दिया उसका मुझे जरामी खेद नहीं है। मैं क्षमा करता हूँ। महाराजका कल्याण हो और वे अपनी रक्षा करके सारे भारतवर्ष पर आर्यों की विजय-पताका फहरावें, यही मेरा आशीर्वाद है।

परीक्षित—ऋषिकुमार, कल आनेवाली मौत आज ही आ जाय और आज आनेवाली अभी, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। पर ऋषिराजका जो मैं अपमान कर चुका हूँ उससे मेरा हृदय जला जाता है। मंत्रीजी, मैं अभी पूज्य शमीक ऋषिके आश्रममें जाऊँगा। उनके पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगूंगा और अपने पापका प्रायश्चित लूँगा।

मंत्री—महाराज, इस समय घरके बाहर निकलनेमें भी संकट है। ऋषिराजके सन्देशके अनुसारमें बैठकर नागोंका षड्‌यन्त्र विफल करना चाहिये। षड्‌यन्त्र विफल होनेपर आप ऋषिराजके आश्रममें जाइयेगा।

गौरमुख—हाँ महाराज, यही ठीक है। गुरुदेवने तो आपको पहिलेसे ही क्षमा कर दिया।

परीक्षित—ऋषिकुमार, तुम्हें धन्यवाद है। मैं षड्‌यन्त्रको विफल करके अवश्य ऋषिराजकी सेवामें उपस्थित हूँगा। ओह ! पश्चात्तापसे मेरा हृदय जल रहा है।

[घुटनों पर सिर रखकर शोक करते हैं]

[पटाक्षेप]

छट्ठा दृश्य

[स्थान वन-पथ । ऋषि शृंगी और ऋषिवेश किये हुए तक्षक आदि नाग-युवकोंका प्रवेश]

शृंगी—नागराज, अब हम नगरके निकट आगये। सभामें प्रवेश तो कठिन नहीं है पर वहाँ जाकर परीक्षित का वध करना आपके हाथका काम है। चपलता, साहस, वीरता और निर्मयतासे ही आप यह कार्य कर सकेंगे। मेरे कार्यके लिये आप जो प्राणोंकी बाजी लगा रहे हैं उसके लिये मैं किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ।

तक्षक—दो दुःखी एक दूसरेका उपकार करनेके लिये धन्यवाद नहीं चाहते। उनमें स्वभावसे ही मित्रता हो जाती है। आप पिताके अपमानसे दुःखी हैं, और मैं जातिके अपमानसे। आर्योंने नागोंको गुलाम बना रक्खा है और हम किसीके गुलाम नहीं रहना चाहते। हाँ, बराबरीसे व्यवहार किया जाय तो हम प्राण देकर भी मित्रताका निर्वाह करेंगे।

शृंगी—मनुष्य मनुष्य है वह न आर्य है न नाग। ये सब व्यवहार चलानेके लिये नाम हैं। मेरा नाम शृंगी है तो इसका यह मतलब नहीं है कि शृंगी नामके मनुष्योंको अपनी जातिका समझूँ और बाकी सबसे घृणा करूँ ? नागराज, आर्य और नाग इन नामोंकी दुहाई देनेसे समस्या पूर्ण न होगी। जब आर्य आर्य न रहेंगे, नाग नाग न रहेंगे, दोनों मिलकर भारतीय बन जायँगे तभी समस्या पूर्ण होगी। न तो नाग नष्ट किये जा सकते हैं न आर्य इस देशसे भगाये जा सकते हैं। इसलिये दोनोंको मिलकर रहनेमें ही काम है।

तक्षक—ऋषिराज, अगर आप ही सरीखी बुद्धि सभी आर्योंकी हो जाय तो इस देशका कल्याण हो जाय। परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि आर्य लोग आपके इस अमूल्य सन्देशको समझेंगे। वे हमें चैन नहीं लेने देते, हम उन्हें चैन न लेने देंगे। आज परीक्षितका वध करके मैं बता दूँगा कि नागोंसे बैर करनेका क्या फल होता है ?

शृंगी—राजा परीक्षित अगर धृष्ट और अहंकारी न होता तो यह समस्या इतनी जटिल न होती। उसके पूर्वज जिस मार्गसे चलते थे उस मार्गसे उसे भी चलना चाहिये था। महाभारतमें सभी तरहकी अनार्य जातियाँ सम्राट्

युधिष्ठिरको सहायता पहुँचाने आई थीं। अर्जुन और भीमने अनार्योंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किया था, पर परीक्षितने वह मार्ग छोड़ दिया। वह तो उन्मत्त होकर आर्य ऋषियोंको भी सताने लगा है, तब उसका वध होना ही चाहिये।

तक्षक—आपकी दयासे अवश्य होगा।

[प्रस्थान]

सातवाँ दृश्य

(स्थान—परीक्षितकी बैठक। आसपास मंत्री तथा अंगरक्षक)

परीक्षित—मन्त्रिन्, षड्यन्त्रके कोई चिह्न नज़र आये?

मंत्री—षड्यन्त्रका तो कुछ पता ही नहीं लगता। नगरमें तो क्या नगरके चारों ओर कई योजनों तक नाग आया हो इसका भी पता नहीं है। इस मकानके चारों तरफ दिनरात कठोर पहरा रहता है। किसी भी नागका यहाँ तक आ सकना असम्भव है।

परीक्षित—शमीक ऋषिको कुछ मिथ्या समाचार तो नहीं मिले?

मंत्री—हो सकता है कि मिथ्या समाचार ही मिले हों।

परीक्षित—और यह भी हो सकता है कि मुझे परेशान करनेके लिये मिथ्या समाचार भेजे हों। मैंने शिकारको जाकर उन्हें परेशान किया और उनने एक समाचार भेजकर मेरा घर ही मेरे लिये कारागृह बना दिया।

मंत्री—शमीक ऋषिके पास भेजकर इस समाचारकी जाँच करता हूँ।

परीक्षित—अवश्य।

(द्वारपालका प्रवेश और प्रणाम)

द्वारपाल—महाराज शमीक ऋषिके पुत्र शृंगी ऋषि कुछ ऋषिकुमारोंके साथ द्वार पर खड़े हैं।

परीक्षित—ठीक समाचार है। अब कुछ न कुछ रहस्योद्घाटन होगा। द्वारपाल! उन्हें आने दो।

(द्वारपाल चला जाता है)

परीक्षित—मंत्रिन्, मैं समझता हूँ कि षड्यन्त्रके समाचारकी असत्यता बतलानेके लिये ही ऋषिराज शमीकने अपने पुत्रको भेजा है।

मंत्री—हाँ महाशय, मैं भी समझता हूँ कि नाग लोग इतना अधिक साहस नहीं कर सकते।

[शृंगी तथा ऋषिवेषी नागोंका प्रवेश]

परीक्षित—पधारिये ब्रह्मन्! कहिये, क्या आज्ञा है?

शृंगी—पूज्य पिताजीने आपके पास जो समाचार भिजवाया था वह समाचार प्रामाणिक नहीं है—यही कहनेके लिये हम लोग आपकी सेवामें आये हैं।

परीक्षित—इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। ऋषिराजका आशीर्वाद हमारी सब तरह रक्षा करेगा।

शृंगी—पिताजीने यह मंत्रपूत जल, फल और दर्भ भेजा है।

परीक्षित—धन्य भाग्य।

(शृंगी जल देता है, राजा अँगुलीसे छूकर सिरसे लगा लेता है। दूसरा ऋषिवेषी नाग फल देता है, राजा उसे ग्रहण कर लेता है। बादमें ऋषिवेषी तक्षक दर्भ लेकर आता है और दर्भ देते समय राजाके गलेसे लिपट जाता है और दर्भाकार लोहेकी विषबुझी सुई राजाके गलेमें चुभो देता है।)

परीक्षित—ओह ब्रह्मन्, यह तुमने क्या किया?

तक्षक—महाराज! मैं अपने आवेशको नहीं रोक सका, मेरी इच्छा हुई कि मैं आपका आलिंगन करूँ।

परीक्षित—पर यह गलेमें दर्भ क्यों चुभाया?

तक्षक—क्या दर्भ चुभ गया? आपका शरीर इतना कोमल है!

परीक्षित—पर यह जलता है, जैसे बिच्छूने डंक मारा हो।

(मंत्री तथा नौकर-चाकर दौड़ पड़ते हैं, राजाको सम्भालते हैं, भीड़ हो जाती है, इसी अवसर पर ऋषिवेषी नाग भाग जाते हैं)

परीक्षित—ओह, दर्भ विष-बुझासा मालूम होता है नागोंका षड्यन्त्र सफल हो गया।

(परीक्षित वेदनासे तड़पते हुए मर जाते हैं)

(पटाक्षेप)

दूसरा अंक

पहिला दृश्य

[स्थान—नागकुमारी कारु का गृहोपवन, कारु चिन्तातुर बैठी है। थोड़ी देर बाद गाने लगती है।]

गीत ४

सहूँ कैसे यह कारागार, उमड़ता रसका पारावार॥
चैन पड़े अब कैसे सजनी?
काट रही यह सूनी रजनी॥
पूछ रहा है मन अब मुझसे, करना किससे प्यार?
सहूँ कैसे यह कारागार, उमड़ता रस का पारावार॥ १॥
मानव-मानव भाई-भाई।
जातिपाँति की व्यर्थ लड़ाई।
जातिपाँतिको प्रेम न पूछे, पूछे जीत न हार॥
सहूँ कैसे यह कारागार, उमड़ता रस का पारावार॥ २॥
सारा जग है शिव की माया।
फिर क्यों वैर विरोध बनाया॥
रहें विविध स्वर मिले रहें पर मानवताके तार॥
सहूँ कैसे यह कारागार, उमड़ता रसका पारावार॥ ३॥
गल-गल कर यह मन बह जाये।
प्रेमामृत की धार बहाये॥
सारा जगत नहाये जिसमें, दूँ ऐसा ही प्यार॥
सहूँ कैसे यह कारागार, उमड़ता रसका पारावार॥ ४॥

मनुष्य आज मनुष्य नहीं है; वह नाग है, आर्य है, देव है, असुर है, इन्हीं टुकड़ोंमें उसका संसार पूरा है। यद्यपि आत्माकी कोई जाति नहीं, रक्त-मांसकी कोई जाति नहीं, प्रेम जातिपाँति नहीं पूछता, पर अहंकारके नशेमें पागल होकर मनुष्य मनुष्यका खून कर रहा है। एक ही देशमें रहते हैं पर

हम आर्य कहलाते हैं, तुम नाग कहलाते हो इसीलिये हम प्रेम नहीं कर सकते। अगर दिल प्रेम करना चाहेगा तो हम दिलको मसल देंगे। इनका नाम कर्तव्य है। आह! आज मनुष्यके समान क्रूर और मूर्ख कौन होगा!

[सखियोंका प्रवेश]

सखी १—यह क्या बाई साहिब, आप यहाँ बैठी हैं! चेहरेपर यह उदासी क्यों है! सारे नगरमें आज आनन्द मनाया जा रहा है। परीक्षितका वध करके महाराज तक्षक आ गये हैं। सारा नगर आज आनन्दसे नाच रहा है और आप इस तरह उदासीन बनकर बैठी हैं।

कारु—इस आनन्दकी जड़में कैसा निरानन्द छिपा हुआ है, इसकी तुम लोगोंको कल्पना ही नहीं है। आर्योंका एक आदमी मर गया इसीलिये आर्य जाति न मर जायगी। आज नहीं तो कल एक आर्यके पीछे हजारों नागोंका खून बहेगा। उस दुर्दिनकी कल्पनासे ही मैं सिहर उठती हूँ।

सखी २—राजकुमारीजी, आज तो आप आर्योंका खूब पक्ष ले रही हैं।

कारु—आर्य भी आखिर मनुष्य हैं और इस देशमें बसे हुए हैं। अब वे यहींके निवासी हो गये हैं। इसलिये आर्य और नागोंके मिलनेमें ही दोनोंका कल्याण है।

सखी १—बाईजी, क्या कोई आर्य-कुमार ही हमारे जीजाजी होंगे?

कारु—तुम्हारे जीजाजी कौन होंगे, इसकी चिन्ता न करो। जिसके जीजा बननेसे मानव-जातिका कल्याण होगा वही तुम्हारा जीजा होगा।

सखी २—पर जीजी, अगर जीजाजी आर्य हुए तब तुम उनकी भाषा कैसे समझोगी?

सखी ३—एक मनकी बात दूसरे मनको समझानेके लिये भाषाकी जरूरत है, पर जहाँ दो मन मिलकर एक हो जायँगे वहाँ भाषाकी जरूरत ही क्या रहेगी?

[सब सखियाँ हँसतीं हैं, कारु भी कुछ मुसकराती है। वासुकि का प्रवेश]

वासुकि—बहिन, आज इस बगीचेमें क्या हो रहा है? तक्षक भाई परीक्षितका वध करके सफलतापूर्वक लौट आये, क्या यह समाचार तुझे नहीं मिला?

कारु—मिला है भाई, और फिर मिल रहा है।

वासुकि—पर तेरे चेहरेपर प्रसन्नता क्यों नहीं है?

कारु—प्रसन्नता क्यों न होगी भाई, जिसका भाई मौतको जीतकर मौतके मुँहमेंसे निकलकर आया हो, उस बहिनके समान भाग्य किसका होगा? परन्तु...

वासुकि—' परन्तु ' क्या बहिन?

कारु—परन्तु भाई इस आनन्दके समयमें भी न मालूम मेरा मन क्यों धुकधुक हो रहा है? ऐसा डर लगता है कि यह सफलता नाग जातिके ऊपर कोई बड़ी विपत्ति न लावे।

वासुकि—जिस बातका तुझे डर लग रहा है वह बात मैं साफ़ साफ़ देख रहा हूँ। आर्य और नागोंका वैर और बढ़ जायगा। परीक्षित मर गया, उसका बेटा जनमेजय अभी शिशु है इसलिये कुछ वर्षों तक आर्य लोग भले ही चुप रहें, पर जनमेजयके जवान होनेपर आर्य लोग इसका बदला लिये बिना न रहेंगे। नागोंकी आज जो दशा है उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आर्योंके इस आक्रमणको नाग लोग सह सकेंगे। अब तो आर्य लोग अपनी पूज्य देश जाति की भी पर्वाह नहीं करते।

कारु—भैया, फिर इसका कुछ उपाय क्यों नहीं सोचते? घर-घरकी नाग नारियाँ जब विधवाएँ बनें, उससे पहिले ही इसका कुछ उपाय करना चाहिये।

वासुकि—बहिन, बड़ी विकट समस्या है और वह एक दिनमें हल नहीं हो सकती। जबतक आर्य आर्य हैं, नाग नाग हैं तब तक यह समस्या हल न होगी। किसी भी देशका यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि उसमें दो संस्कृतियाँ या दो जातियाँ रहें।

कारु—तब क्या उपाय है?

वासुकि—उपाय यही है कि दोनों मिलकर एक हो जायें।

कारु—यह कैसे होगा भैया? आर्य लोग बड़े घमंडी हैं, वे नाम नहीं छोड़ सकते और नाग भी इसके लिये तैयार नहीं होंगे। किस द्वारसे आकर दोनों मिलें इसका उत्तर नहीं मिलता।

वासुकि—बहिन, विधाताके राज्यमें बीमारियाँ कितनी ही हों पर उन सबकी दवाई उसने बना रक्खी है। विधाताने मनुष्यको एक ही जातिका बनाया है। मनुष्य जब अपने अहंकार और मूढ़तासे मानवजातिके टुकड़े-टुकड़े करने बैठे तब उसकी चिकित्साके लिये विधाताने नारीको बनाया है। दो जातियोंके बीचमें नारी ही एक पुल का काम दे सकती है।

कारु—भैया, नारीकी इतनी प्रशंसा करके तुम मुझे घोखेमें न डाल दो। मानव-जातिके कल्याणके लिये तुम मेरा शरीरही नहीं, प्राण और मन भी जिस तरह चाहो उस तरह लगा सकते हो।

वासुकि—तुम सरीखी बहिनसे मैं यही आशा रखता हूँ। बहुत दिनसे मैं इस बातपर विचार कर रहा हूँ कि अगर किसी आर्य राजाके साथ तेरी शादी हो तो दोनों जातियोंके बीचमें मेल होनेमें काफ़ी सहायता मिल सकती है।

कारु—मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है भैया, पर मेरी समझमें किसी आर्य ऋषिसे शादी करना इससे भी अधिक लाभदायक होगा। आर्य राजाके यहाँ वैभव मिल सकता है पर मैं वैभव की प्यासी नहीं हूँ। न सौतोंके बीचमें रहकर जीवन बर्बाद करना चाहती हूँ। आर्य संस्कृति ऋषियों की संस्कृति है, आर्य राजा ऋषियोंके इशारेपर नाचते हैं इसलिये मेरी सन्तान ऋषिसन्तान हो, वह आर्य राजाओं पर, आर्य जनता पर प्रभाव डाल सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

वासुकि—कारु, तू मेरी छोटी बहिन है, पर बुद्धिमत्ता, विचारकता और त्यागसे नागजातिकी सरस्वती है। तेरा यह त्याग नागजातिके लिये आशीर्वादका काम देगा। अब मैं चलता हूँ। उन्मत्त नागोंको भी समझाना है और मदान्ध आर्योंको भी वश में करना है। कार्य कठिन है पर तुझ सरीखी महिलाओंके त्याग और बलिदानसे मार्ग सरल हो जायगा।

(कारु भाईको प्रणाम करती है और वासुकि उसके सिरपर आशीर्वादसूचक हाथ रखकर विदा लेता है)

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

(विविध भावभंगियोंके साथ हँसते, नाचते, कूदते और गाते हुए नाग-युवकोंका प्रवेश, गीतके भावके अनुसार नाट्य भी करते हैं)

गीत ५

हम वैरियोंको दास या किंकर बनायेंगे।

या उनके खूनसे जमीन तर बनायेंगे।
कुछ कर दिखायेंगे ॥१॥

रहने न पायेगा यहाँ पै आर्य एक भी।
हम उनके खूनके यहाँ निर्झर बहायेंगे।
जौहर दिखायेंगे ॥२॥

वे नर बने, नरेश बने आज घूमते।
हम उनको पकड़के यहाँ वानर बनायेंगे।
पशु खिलायेंगे ॥३॥

(बन्दरकी नकल करते हैं)

जो घोड़ेके सवार बने ऐंठ बताते।
हम उनके घोड़े छीन उन्हें खर बनायेंगे।
मिट्टी लदायेंगे ॥४॥

(गधेके स्वरकी नकल करते हैं)

कर देंगे यज्ञ बन्द वेदमन्त्र मिटा कर।
हम अपने शिवालयमें उनके सिर झुकायेंगे।
भूपर गिरायेंगे ॥५॥

देखेंगे कौन रोकता है हमको जगत्में।
हम उनके राजमन्दिरोंको घर बनायेंगे।
शय्या सजायेंगे ॥६॥

सीखेगा सब जगत हमारी नाग सभ्यता।
सीखेंगे जो नहीं वही बर्बर कहायेंगे।
इज्जत गमायेंगे ॥७॥

सब—हर ! हर ! महादेव !

एक युवक—भाइयो, हमारी गफलतसे आर्य लोग यहाँ सम्राट् बनकर बैठ गये हैं। वे हमारा और हमारी महान नाग सभ्यताका नाश करना चाहते हैं। हमारी मूर्तियोंकी हँसी उड़ाते हैं, हमको नीच समझते हैं, हमारे धर्मको तुच्छ मानते हैं। हमें इन अत्याचारोंका बदला लेना है। हमको चाहिये कि जब तक हमारे शरीरमें रक्तकी एक भी बूँद रहे तबतक आर्योंकी गर्दनें काटते रहें। हमारे देशमें उनकी लाशोंको भी जगह न मिलने पाये।

दूसरा—हम उनकी लाशें जलने न देंगे। चीलों और कुत्तोंको खिलायेंगे।

तीसरा—आर्य लोग अहंकारी और दुष्ट हैं। उनने हमारे प्रेमका दुरुपयोग किया है। वे हमारे सिर पर सवार होना चाहते हैं पर हम उन्हें पैरोंसे कुचल देंगे।

चौथा—ये जंगली लोग हमें सभ्यताका पाठ पढ़ानेका दावा करते हैं। जब कि ये सभ्यताको समझते भी नहीं हैं। न इन्हें किसी शिल्पका पता है, न कला का। मिट्टीका पुतला बना नहीं सकते और कहते हैं हम मूर्तिपूजाके विरोधी हैं। इसलिये उसी की पूजामें चिल्लाते रहते हैं। अमूर्त परमात्माको मूर्तरूप देना इनकी अक्लके बाहरकी बात है।

पाँचवाँ—आख़िर हैं तो जानवर ही। शिवजी जब बन्दर बनाने बैठे तब कुछ बन्दरोंकी पूँछ टूट गई सो वे आर्य बन गये। शक्ल तो मनुष्यों जैसी है पर अक्ल बन्दर जैसी।

[सब हँसते है]

पहिला युवक—भाई, अब हमें अपना संगठन मजबूत बनाना चाहिये। जहाँ किसी आर्यको देखें वहीं क़त्ल करदें। आर्य शासकोंके छिद्र देखते रहें। मौक़ा पाया कि ख़त्म। देखें ये कैसे चैनसे बैठते हैं। जब इनको सोते, जागते, उठते, बैठते यमराज की तरह नागयुवक चारों ओर दिखाई देने लगें तभी हमारा नाम।

दूसरा—आर्य-वध प्रत्येक नागयुवकका कर्तव्य है।

तीसरा—तो हम कर्तव्यमें पीछे न हटेंगे।

सब—हम वैरियों को दास या किंकर बनायेंगे।
या उनके ख़ूनसे ज़मीन तर बनायेंगे॥
कुछ कर दिखायेंगे।

[इत्यादि गाते हुए नागयुवकों का प्रस्थान]

तीसरा दृश्य

[स्थान—नागोंकी राजसभा; नागकन्याओंका साभिनय गीत]

गीत ६

पधारो! पधारो! पधारो महाराज,
मनो-मन्दिरमें सबके पधारो।

उबारो उबारो उबारो महाराज,
आज नौका फँसी है उबारो ॥ १ ॥
तुम ही हो जनताके प्यारे दुलारे।
आँखोंके तारे हमारे उजियारे ॥
मित्रों की आशा, निराशा हो शत्रुओं की।
आशा हमारी विचारो ॥
विचारो महाराज, मनोमन्दिरमें सबके पधारो ॥
पधारो पधारो पधारो......॥ २ ॥
अंचल पसारे खड़ी हैं ललनाएँ।
पथमें तुम्हारे लिये आँखें बिछाये ॥
उनका करो काम, होवे अमर नाम।
नागोंका संकट निवारो।
निवारो, महाराज मनोमंदिरमें सबके पधारो ॥
पधारो पधारो पधारो······॥३॥
जयघोष गूँजे जगतमें तुम्हारा।
अरिदलका दिल दहले भागे बेचारा ॥
ब्रह्मांड हिल जाय, शिव हो प्रचंड-काय।
अरियोंकी आशा विदारो।
विदारो महाराज, मनोमंदिरमें सबके पधारो ॥
पधारो पधारो पधारो······॥४॥

वासुकि—सज्जनो, आज हमारे लिये बड़े सौभाग्यका दिन है कि मेरे प्यारे भाई तक्षक आर्योंकी नगरीसे सकुशल लौट आये हैं। इनके साहस, चतुरता और वीरताकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इनने जो काम किया है वह शेरकी गुफामें जाकर उसका दाँत तोड़ आनेसे भी अधिक कठिन था। वह काम करके सफलतापूर्वक लौट आनेकी खुशीमें मैं अपनी और आप लोगोंकी तरफसे यह हार अर्पण करता हूँ।

[हार पहनाता है]

तक्षक—पूज्य भाई साहिब तथा अन्य मित्रो, आप लोगोंके आशीर्वादको मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मुझे इस बातकी खुशी नहीं है कि मैं दुष्ट

आर्योंके बंधुओंमेंसे जिन्दा लौट आया। खुशी इस बातकी है कि मैं उस पापी राजाका वध कर आया। वध करके अगर मैं जिन्दा न भी लौटता तो भी मुझे खुशी होती और अपने जीवनको सफल समझता। पर अगर वध न करके मैं जिंदा भी लौटता तो मैं अपनेको मुर्देसे भी खराब समझता।

(तालियाँ)

एक सभासद—महाराज, तक्षकने जो वीरतापूर्ण आश्चर्य कार्य करके दिखाया है उससे नागजातिका गौरव मात्र ही नहीं बढ़ेगा बल्कि आर्योंके ऊपर हमारी धाक बैठ जायगी। इतना ही नहीं प्रत्येक नागयुवकमें बिजली दौड़ने लगेगी और वे असंभव कार्य कर दिखानेमें भी समर्थ हो सकेंगे।

दूसरा सभासद्—लोग कहते हैं कि आर्योंको इस देशसे भगा देना असंभव है पर आजकी सफलतासे यह कहा जा सकता है कि यह असंभव हो जायगा। आर्योंको या तो यहाँसे मुँह काला करना पड़ेगा अथवा हमारा दास बनकर रहना पड़ेगा।

कारु—भाइयो, मेरे माननीय भाई जो सकुशल लौट आये हैं उसकी खुशीमें मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है। जबसे भाईने प्रस्थान किया तभीसे मुझे दिन-रात नींद नहीं आई है। मैं आँचल पसार-पसारकर शिवजीसे अपने भाईके प्राणोंकी भीख माँगती रही हूँ। आज मैं प्रसन्न हूँ फिर भी निश्चिन्त नहीं हूँ। मुझे लगता है कि जो कुछ घटना हुई है वह निकट भविष्यमें नागजातिके ऊपर विपत्ति बरसायेगी। आर्योंका राजा मरा, इसलिये सारी आर्य जातिका खून खौलने लगा होगा, पर हम आर्योंका इतना नुकसान नहीं कर सके। राजा मरा है पर इससे हुई तो सिर्फ एक ही मनुष्य की हानि है। एक मनुष्यके मरनेसे सारी आर्य जाति नहीं मर सकती पर संगठित होकर हमारा तीव्र विरोध कर सकती है। इसलिये अभीसे कोई ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे उस विकट समयमें हमारी रक्षा हो सके। मैं नारी हूँ इसलिये इसे आप मेरी कमजोरी-भीरुता आदि कह सकते हैं, फिर भी अगर आप उचित समझें तो अवश्य मेरी बातपर विचार करें।

वासुकि—कारु बहिनने जो कुछ कहा है उससे मैं भी सहमत हूँ। जितना हमने आगे कदम बढ़ा लिया है उतनी तैयारी हमें अवश्य करना चाहिये। परीक्षितका लड़का जनमेजय अभी छोटा है, पर कल वह बड़ा हो जायगा और तब आर्य हमसे बदला लिये बिना न रहेंगे। सौन्दर्य, कला और सभ्यतामें हम लोग भले ही बढ़े-चढ़े हों, पर संगठित आर्योंका विरोध

रहना कठिन है। मैं नहीं समझता कि शताब्दियोंसे बने हुए भाव शीघ्र मिटाये जा सकते हैं। हमें और उन्हें अब इसी देशमें रहना है। इसलिये ऐसा कोई रास्ता निकालना चाहिये, जिससे दोनों जातियोंमें मेल बढ़े और ऐसी एकता हो जाय कि हमारा और उनका अस्तित्व, हम दोनोंके मिलनसे बननेवाली एक नई जातिमें विलीन हो जाय।

एक सभासद्—हम लोग आपकी आज्ञामें हैं, आप जो कहेंगे हम वही करेंगे, परन्तु क्षमा कीजिये मेरा तो यह विचार है कि मदान्ध आर्योंके साथ मित्रता हो ही नहीं सकती। आज तक हमने इतने प्रयत्न किये पर सब व्यर्थ गये। वह जाति ही ऐसे कुतत्त्वोंसे बनी है कि प्रेम और नम्रता उसमें है ही नहीं। उसने जब देखो तब हमारा नाश और अपमान ही किया है। अब किस मुँहसे मित्रता की जाय।

तक्षक—मैं भाई साहिबकी आज्ञाके बाहर नहीं हूँ पर यह कहना चाहता हूँ कि मित्रता समान बलमें ही हो सकती है। सिंह और हरिणकी मैत्री नहीं हो सकती। भयके बिना प्रेम नहीं रहता। आर्योंके साथ हमारी मित्रता तभी संभव है जब आर्योंको हमारी शक्तिका पता लग जाय और उन्हें नागोंके साथ मित्रता करनेकी आवश्यकताका अनुभव होने लगे। हम मित्र बनकर मिल सकते हैं, दास बनकर नहीं। अगर वे हमें दास बनानेकी चेष्टा करेंगे तो हम उन्हें दास बनाकर छोड़ेंगे।

वासुकि—भाई, एक देशके भीतर सदाके लिये दो जातियाँ स्वामी और दास बनकर नहीं रह सकतीं। उनमेंसे या तो किसी एकको मिट जाना पड़ता है या दोनोंको मिलकर एक हो जाना पड़ता है। यहाँ न हम मिट सकते हैं न आर्य मिट सकते हैं। इसलिये अंतमें दोनोंको मिलकर एक होनाही पड़ेगा। आपका यह कहना बहुतही ठीक है कि मित्रता समान बलमें होती, है पर हम निर्बल नहीं हैं। अगर निर्बल होते तो भाई तक्षकके आनेके पहिले आर्योंकी सेनाने हमपर चढ़ाई कर दी होती। हमपर चढ़ाई करनेके लिये आर्योंको समय लगेगा। और दस-बीस वर्षके पहिले वे हमारा कुछ न कुछ कर सकेंगे। पर आर्य इस वैरको भूलेंगे नहीं, एक न एक दिन उनका कोप हमपर उतरेगा, उस दिनके लिये हमें अभीसे तैयारी करना चाहिये।

दूसरा सभासद—आपका यह कहना बिलकुल ठीक है। हमें अपना सैनिक-शिक्षण बढ़ाना चाहिये, संगठन करना चाहिये।

वासुकि—यह तो सम्मानजनक और पवित्र कार्य है, पर इतनेसे ही कर्तव्यकी समाप्ति नहीं हो जाती। हमारी जातिके लिये भी कुछ करना चाहिये।

तक्षक—आप आज्ञा दीजिये कि हम क्या करें?

वासुकि—अपने सामने तीन काम हैं। पहिली बात तो बल और संगठनकी है, वह निर्विवाद है। दूसरी बात संस्कृति या धार्मिक एकता की है। आर्योंका धर्म ऐसा अद्भुत है कि न तो उससे बुद्धिको संतोष मिलता है, न मनको। न उसमें कलाको स्थान है न विज्ञानको। इसलिये एकताके लिये ही नहीं किन्तु उनके ऊपर दया करके भी अपने धर्मका रहस्य उन्हें सिखाना चाहिये। तीसरी बात सामाजिक एकताकी है, यही सबसे बड़ी महत्वकी बात है। अगर दोनों समाजोंमें विवाहसंबंध स्थापित हो जाय तो धीरे धीरे दोनों जातियोंका द्वेष नष्ट हो जायगा।

तक्षक—पर अभिमानी आर्य ऐसा न करेंगे। वे कभी यह बात पसंद न करेंगे कि आर्यकन्याएँ नागकुमारोंके साथ विवाह करें।

वासुकि—यह अहंकार बहुत दिन न चलेगा और न हमें इसकी जरूरत है। आर्यकन्याएँ अगर हमारे घरोंमें आयेंगी तो वे आर्य सभ्यताको ही हमारे घरोंमें लायेंगी। इससे हमें विशेष लाभ न होगा। आवश्यकता इस बातकी है कि आर्यकुमार हमारे घरोंमें आवें और वे हमारी सभ्यतासे प्रभावित हों अथवा नाग-कन्याएँ आर्योंके घरमें जावें, जिससे उनके घरोंमें नाग सभ्यताके बीज बोजायँ।

तक्षक—पर साधारण नागकन्याएँ यह काम नहीं कर सकतीं, और असाधारण कन्याएँ इस प्रकारके विजातीय विवाहके लिये तैयार न होंगी। क्या कोई ऐसी कन्या तैयार है?

कारु—मैं हूँ।

एक सभासद्—राजकुमारी जी, आप!

कारु—हाँ भाई मैं। नागों और आर्योंके बीचमें जो विरोधका समुद्र लहरा रहा है, उसके ऊपर अगर मैं पुल बन सकूँ तो इससे बढ़कर मेरे जीवनकी सफलता क्या होगी? नागजातिके कल्याणके लिये आप जो आज्ञा मुझे देंगे वह पूजनीय, वंदनीय और आचरणीय होगी। आप लोगोंकी आज्ञासे मैं जीवनभर कुमारी रह सकती हूँ, जिस जातिके मनुष्यके साथ आप

लोग कहें उस जातिके मनुष्यके साथ विवाह कर सकती हूँ इतना ही नहीं, अगर जातिके कल्याणके लिये मुझे विधवाका जीवन बिताना पड़े तो वह भी बिता सकती हूँ।

एक सभासद्—राजकुमारीजी की...

सब—जय!!

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

[स्थान—वनपथ। ऋषिकुमार जरत्का प्रवेश]

जरत्—पितृऋण। आर्यधर्म कहता है कि छोटासा बच्चा भी जन्मसे ऋणी पैदा होता है। माताका ऋण, पिताका ऋण, समाजका ऋण, सबका ऋण, सो भी ऐसा कि सारी तपस्याओंको व्यर्थ कर दे। गुरुओंकी आज्ञा है। मैं पहिले पुत्र उत्पन्न करूँ पीछे संन्यास लूँ। किसी तरह आर्योंकी संख्या बढ़ना चाहिये इसीलिये यह सब ऋणका ढकोसला है। पर गृहस्थ जीवनके बोझको मैं नहीं उठाना चाहता। और न मुझे अनार्योंपर चढ़नेके लिये आर्योंकी संख्या बढ़ानेकी चिन्ता है। मैं तो समझ ही नहीं सकता कि मनुष्य मनुष्यके साथ वैर करता ही क्यों है, और जातिभेदकी रचना भी क्यों करता है! आर्य हो या नाग; आखिर सब मनुष्य हैं।

(वासुकि और कारुका प्रवेश)

वासुकि—ऋषिराज, इधर किधर जा रहे हैं?

जरत्—मैं एक विशेष उद्देश्यसे देशाटन कर रहा हूँ।

वासुकि—आपका शुभ नाम?

जरत्—मेरा नाम जरत्। मैं एक आर्य ऋषि हूँ। पर आपका शुभ नाम?

वासुकि—मैं नागराज वासुकि हूँ।

जरत्—नागराज वासुकि! धन्य भाग्य! और ये देवी?

वासुकि—यह मेरी बहिन कारु है। क्या आप बतलानेकी कृपा करेंगे? कि आपका यह विशेष उद्देश्य क्या है?

जरत्—आप सुनकर क्या करेंगे? आप नाग हैं, न तो आर्योंपर विश्वास रखते हैं न प्रेम। इसमें आपका अपराध भी नहीं है। आर्य भी ऐसा ही करते हैं। ऐसी परिस्थितिमें आपसे अपनी बात कहनेमें कोई लाभ नहीं।

वासुकि—ऋषिकुमार, आपका कहना ठीक है, पर मैं इस बातसे अनभिज्ञ नहीं हूँ कि आर्योंके भीतर भी ऐसे मनुष्य हैं जो आर्यत्वकी अपेक्षा मनुष्यत्वके पुजारी हैं और नागोंके भीतर तो आपको ऐसे लोगोंकी संख्या और भी अधिक मिलेगी।

अरत्—नागराज, आपकी बातोंसे मुझे प्रसन्नता हुई है मैं भी यही चाहता हूँ। मैं आर्य और नाग, आर्यावर्त और नागलोकके भेदको पसन्द नहीं करता। आप सरीखे सज्जनोंके दर्शनोंसे मैं जीवन सफल समझता हूँ। यद्यपि मैं मानता हूँ कि ऐसे उदार होनेपर भी मेरे उद्देश्यमें मुझे आप सहायता न कर सकेंगे, फिर भी अपना संकट आपसे कह देनेकी इच्छा होती है।

वासुकि—अवश्य कहिये, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपका संकट दूर करनेमें मैं कुछ उठा न रक्खूँगा।

अरत्—बात यह है कि मैं एक युवक संन्यासी हूँ। संन्यासमें ही मुझे आनन्द आता है। गार्हस्थ्य जीवनकी दीनता और झँझट मैं सहन नहीं कर सकता इसलिये युवा होते ही मैं संन्यासी हो गया। पर आर्य लोग इस बातको सहन नहीं करते। वे सन्तान उत्पन्न करनेके लिये मुझे ज़ोर दे रहे हैं। वे हर तरह आर्योंकी संख्या बढ़ाना चाहते हैं। मुझे न तो यह विचार पसन्द है न इस कार्यमें रुचि है। यही मेरा संकट है।

वासुकि—अगर आप विवाह न करें तो?

अरत्—तो आर्य लोग मेरा बहिष्कार कर देंगे। घोर निन्दा करेंगे। आर्योंके भीतर मेरा रहना मुश्किल हो जायगा।

वासुकि—तब तो आपको विवाह करना ही उचित है।

अरत्—उसके लिये मैं तैयार हूँ परन्तु दुर्भाग्य यह है कि कोई कन्या मेरे साथ विवाह करनेको तैयार नहीं होती। मैं किसी भी जातिकी योग्य कन्यासे विवाह करनेको तैयार हूँ, पर मिले तो।

वासुकि—आश्चर्य है कि आप सरीखे प्रतिष्ठित सुन्दर विद्वान सदाचारी युवक ऋषिके साथ कोई कन्या शादी नहीं करना चाहती! क्या आर्योंने इधर भी कुछ अड़ंगा लगाया है?

अरत्—नहीं, आर्य लोग इसमें बाधक नहीं हैं। बाधक हैं मेरी दो शर्तें।

वासुकि—कौनसी?

जरत्—पहिली तो यह कि मैं गार्हस्थ्य जीवनका आर्थिक प्रबन्ध और तत्सम्बन्धी कोई बोझ अपने सिरपर लेनेको तैयार नहीं हूँ। यह बोझ कन्याके अभिभावकों को ही उठाना पड़ेगा। दूसरी यह कि पुत्र उत्पन्न होनेके बाद एक वर्षके भीतरही मैं फिर संन्यासी हो जाऊँगा।

वासुकि—आपकी यह दूसरी शर्त ही कठिन है।

जरत्—सो तो है, पर मैं विवश हूँ।

[वासुकि गम्भीर चिन्तामें पड़ जाते हैं फिर चारु की तरफ़ देखते हैं]

वासुकि—चारु।

चारु—भैया, मैं तैयार हूँ।

जरत्—राजकुमारी जी, आप!

चारु—हाँ देव, मैं।

जरत्—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप राजकुमारी है आपने पुण्योदयसे सभी सुख साधन पाये हैं। इसलिये जानबूझकर वैधव्य न पाकर भी वैधव्यकी यातनाको निमन्त्रण न दीजिये।

चारु—ऋषिराज, मैंने अच्छी तरह सोच विचार कर ही निश्चय किया है। मेरे जीवनका भी एक ध्येय है। मैं न कौमार्यसे डरती हूँ न वैधव्यसे। मैं चाहती हूँ—आर्यों और नागोंकी एकता और उस एकताके लिये मर मिटने-वाली सन्तान। इसके लिये मैं जीवनभर तपस्या करनेको तैयार हूँ। आपके और मेरे विचार एकसे हैं; इसलिये हमारी सन्तान हमसे बढ़कर निकलेगी। आपकी जब इच्छा हो तब आप आत्मोद्धारके लिये चलेजानापर मैं तो समाजो-द्धारके लिये मनुष्य-निर्माणके कार्यमें लगी रहूँगी।

जरत्—देवी, तुम्हारे इस त्याग, सेवा, साहस और विवेकके आगे मेरा मस्तक झुक जाता है। जब आप इस दीन पर इतनी कृपालु हैं तब मैं उस कृपाकी अवहेलना नहीं कर सकता। पर आपको मेरी पहली शर्त भी मंजूर है न?

वासुकि—उसकी आप चिन्ता न कीजिये। उसका बोझ मेरे ऊपर है।

जरत्—तब चलिये।

(तीनोंका प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—अन्तःपुर। दासियाँ शयनागार सजा रही हैं और बातें भी करती जाती हैं)

पहली दासी—बहिन, मेरी तो समझमें नहीं आता कि शयनागार कैसा सजाऊँ ?

दूसरी—जैसा अपने यहाँ सजाया जाता है, वैसा ही सजाओ।

पहली—पर जीजा जी तो आर्य हैं। आर्योंकी रुचि कैसी होती है, मैं क्या जानूँ ?

दूसरी—आर्योंकी रुचि कैसी भी हो, पर जीजाजीकी रुचि कैसी है, इसका पता इसीसे लगजाता है कि उनने एक नागकुमारीसे शादी की है।

पहली—आर्यकुमारी हो या नागकुमारी हो, शरीरमें तो कुछ भेद मालूम होता नहीं है, इसलिये निभ जाती है; पर सजावट वगैरह तो वही अच्छी लगती है जिसे देखनेकी आँखोंको आदत रहती है।

दूसरी—पर मेरी समझमें तो नई चीज देखनेमें मजा ज्यादह आता है। नई चीज तो कम सुन्दर हो तो भी नई होनेसे अच्छी मालूम होती है। इसलिये अपने यहाँकी सजावट जीजाजीको और अच्छी मालूम होगी।

(एक तरफसे अरत् और कारुका प्रवेश उस तरफ दासीकी पीठ होनेसे वह उन्हें नहीं देख पाती और बोलती है)

पहली दासी—तब तो जीजी उन्हें और भी अच्छी मालूम होगी।

(दासीकी बात सुनकर दम्पति मुसकराते हैं, दासियाँ उन्हें देखकर शर्मिन्दा होकर भाग जाती हैं)

अरत्—कारु, तुम्हारे यहाँ कितना आनन्द है ! कितनी शान्ति है ! इस अवस्थामें मनुष्यको स्वर्ग या मोक्षकी इच्छा ही कैसे हो सकती है ?

कारु—देव, मनुष्य अगर मनुष्यके सिरपर सवार होनेकी कुचेष्टा न करे, प्रेमका पुजारी बने तो इस जगत्में किसीको स्वर्ग और मोक्षकी जरूरत ही न मालूम हो।

अरत्—ठीक कहती हो कारु, मनुष्यने ही इस स्वर्गको नरक बनाया है।

कारु—स्वर्ग और नरकको बनते देर नहीं लगती। जहाँ प्रेम है वहीं स्वर्ग है, जहाँ प्रेम नहीं है वहीं नरक है।

अरत्—पर स्वर्ग नरककी चंचलताको देखकर कहना पड़ता है कि प्रेम माया है।

कारु—प्रेम माया भी है, और प्रेम ईश्वर भी है। ईश्वर अकेला ईश्वर है और माया अकेली माया है, पर प्रेम तो ईश्वर और माया दोनों है।

गीत ७

प्रेम जगतका ईश्वर भी है, प्रेम जगतकी माया।
स्वर्ग न पाया मोक्ष न पाया जिसने प्रेम न पाया ॥ १ ॥
प्रेम भवनका पन्थ निराला।
प्रेम न जाने गोरा काला ॥
प्रेम न जाने ऊँचा नीचा अपना और पराया ॥
प्रेम जगतका ईश्वर भी है, प्रेम जगतकी माया ॥ २ ॥
मन मन्दिरमें दीप जलायें।
आयें सब रवि शशि तारायें ॥
मिलकर प्रेमगीत सब गायें पायें सब मनभाया ॥
प्रेम जगतका ईश्वर भी है प्रेम जगतकी माया ॥ ३ ॥
मिलें गगनचर, जलचर, थलचर।
अनिल, अनल, भूतल, रत्नाकर ॥
मनमें मन मिल जाय प्रेमकी छाये सबपर छाया।
प्रेम जगतका ईश्वर भी है, प्रेम जगतकी माया ॥ ४ ॥

अरत्—धन्य है कारु तुम्हें। तुम्हारी प्रेमभक्ति असाधारण है। अगर संसारका प्रत्येक मनुष्य ऐसा ही प्रेमपुजारी होता।

कारु—होता कैसे देव, अहंकार और स्वार्थ पिशाचकी तरह मनुष्यके पीछे पड़े हैं। ये उसे प्रेम पुजारी नहीं बनने देते।

अरत्—समझमें नहीं आता अहंकारमें मनुष्यको क्या आनन्द आता है। मैं तुम्हारा हूँ, इसमें जो आनन्द है वह 'मैं बड़ा हूँ' इसमें कहाँ है?

कारु—पर मनुष्य जितना विकसित होता जाता है, मानो उतनाही आनन्दका शत्रु बनता जाता है। मनुष्यको बुद्धि मनुष्यताके विकासमें नहीं, किन्तु स्वव-

स्थिर रूपमें पशुताके प्रदर्शनमें लग रही है। पशु जहाँ जातिभेद की कल्पना नहीं कर सकता वहाँ मनुष्य करता है। पशु वैरकी परंपरा कभी नहीं करता, मनुष्य सदाके लिये वैरको बनाता है। मनुष्यने व्यवस्था और विकासके द्वारा पशुताको तीक्ष्ण और चटपटा बनाया है। जड़ता की कमी हो रही है पर उसकी जगह शैतानियत ले रही है।

अरस्तू—सच है कारु, जगतमें मनुष्याकार जन्तु तो हैं, पर मनुष्यता नहीं है।

कारु—मनुष्याकार जन्तुको मनुष्य बनानेके लिये, सच्चे मनुष्योंको पैदा करनेके लिये हमारी शक्ति जितनी लगे हमारे जीवनकी उतनीही सार्थकता है।

अरस्तू—तुम्हारा कहना बहुत ठीक है पर यह भी न भूलना चाहिये कि मनुष्य बनानेके मार्ग जुदे-जुदे हैं। मनुष्यके जनक बनकर, मनुष्यके गुरु बनकर, मनुष्यके भाई या मित्र बनकर अथवा निरपेक्ष भावसे मानव-जगतमें मनुष्यताका संगीत गुँजाकर हम मनुष्यताका पाठ पढ़ा सकते हैं। हरएकको अपनी अपनी योग्यताके अनुसार सेवाका ढंग चुनलेना चाहिये। पर हर हालतमें निःस्वार्थ और अप्रमत्त रहना जरूरी है।

[कारु कुछ सोचती रहती है]

अरस्तू—क्या सोचती हो कारु ?

कारु—सोचती हूँ कि मैं पत्थर खोजने निकली थी और मुझे रत्न मिल गया है।

अरस्तू—तो इसमें सोचनेकी क्या बात है ? यह तो खुशीकी बात हुई। (मुसकराते हैं)

कारु—किसी गरीबको रत्न मिल जाय तो उसे खुशी होगी ही, पर इस बातकी चिन्ता भी होगी कि अयोग्यता देखकर रत्न कहीं चला न जाय।

अरस्तू—रत्न ऐसा कृतघ्न नहीं हो सकता कि जो उसे धूलमेंसे उठाकर सिरपर रक्खे वह उसे ही छोड़कर चला जाय।

कारु—हाँ, जड़-रत्न तो ऐसा नहीं हो सकता, पर चेतन-रत्न कभी-कभी इतना ईमानदार नहीं होता। (मुसकराती है)

अरस्तू—(गम्भीरतासे कुछ सोचनेके बाद) कारु, कृतज्ञताके वशमें होकर क्या रत्न कहीं नहीं जा सकता ?

कारु—जा करके भी कृतज्ञता ?

अरत्—हाँ, अगर रत्न यह सोचे कि यहाँ रहकर न तो मैं मालिककी शोभा बढ़ाता हूँ न उसके जीवनका कष्ट दूर करता हूँ इसलिये मुझे बाजारमें बिककर मालिकके कष्ट दूर करना चाहिये, तो यह उसकी कृतज्ञता ही होगी।

कारु—पर गरीबके दिलको कितनी चोट पहुँचेगी।

अरत्—पर जीवन सिर्फ दिलका बना हुआ नहीं है। यहाँ कठोर सत्य भी है जिसकी वेदीपर दिलका भी बलिदान करना पड़ता है। जिसने सेवाका व्रत लिया हो उसको सारा जीवन चढ़ाना पड़ता है फिर दिल कहाँ बचेगा: दिल भी चढ़ाना पड़ेगा।

[कारु कुछ सोचने लगती है]

कारु—देव, आप भी जन-कल्याणके लिये जीवन अर्पण करना चाहते हैं और मैं भी। फिर दोनोंका रास्ता जुदा क्यों?

अरत्—अब रास्ता जुदा कहाँ है देवि, तुम्हारे सम्पर्कमें आनेके बाद मेरी कायापलट हो गई है। प्रथम दर्शनके समय तुमने जो यह वाक्य कहा था कि 'समाजोद्धारके लिये मनुष्य-निर्माणके कार्यमें लगी रहूँगी' वह मेरे कानोंमें अभीतक गूँज रहा है। मैं सोचता हूँ कि इसीमें सच्ची तपस्या और आत्मोद्धार है और अब मैं समझता हूँ कि प्रेम, सेवा और तपमें कोई विरोध नहीं है।

कारु—धन्य भाग्य, मेरा प्रेम सार्थक हुआ।

अरत्—अवश्य सार्थक हुआ है। विजयी होकर सार्थक हुआ है। पर पति-प्रेम नहीं विश्वप्रेम। तुम मेरी दृष्टिमें मेरी पत्नी ही नहीं हो विश्वप्रेमकी देवी भी हो।

कारु—पर देवके बिना देवीका देवीत्व अधूरा है।

अरत्—लेकिन जहाँ देवीत्व पूरा है वहाँ देव कहाँ जा सकता है? पर एक बात है कारु, हम तुम सेवाकी वेदीपर चढ़ाये जानेवाले फूल हैं। पुजारी किस फूलको चढ़ानेके लिये पहिले उठायगा और किसको पीछे, और किसको किस तरह, किस जगह चढ़ायगा यह नहीं कहा जा सकता। इस जुदाईको जुदाई न मानना चाहिये। क्योंकि अन्तमें सभी फूल एक ही देवकी शरणमें पहुँचनेवाले हैं।

कारु—देव, मैं अपने मनकी कमजोरी दूर हटानेकी कोशिश करूँगी। उस अनन्त सम्मिलनकी आशामें क्षणिक वियोगपर विजय पाऊँगी।

जरत्‌—ऐसी कोई आज्ञा नहीं, जो मैं तुमसे न कर सकूँ।"

[सोनेकी तैयारी करते हैं]

[पटाक्षेप]

छट्ठा दृश्य

[स्थान—वनपथ, राजा जनमेजयका मंत्रीके साथ प्रवेश]

जनमेजय—मंत्रिन्, आज हम जंगलमें बहुत दूर निकल आये हैं। कुछ विश्रामकी इच्छा है। पासमें यह आश्रम किसका है?

मंत्री—महाराज, [इतना कहकर मंत्रीका गला भर आता है वह कुछ नहीं बोल सकता उसके मुँह पर विषाद की छाया छा जाती है]

जनमेजय—मंत्रिन्, आप रुक क्यों गये?

मंत्री—कुछ नहीं महाराज, यह शमीक ऋषिका आश्रम है।

जनमेजय—समझा। पर शमीक ऋषिके आश्रमकी यादसे आपके चेहरे पर इतना विषाद क्यों आ गया? इसमें कुछ रहस्य मालूम होता है, आप क्यों छिपाते हैं?

मंत्री—महाराज, ऐसी कौनसी बात है जो आपसे छिपाई जाय। पर जो वेदना पिछले बीस वर्षोंसे दिलमें सुलाये हुए हूँ, वही आज इस आश्रमको देख कर जग पड़ी है। जी चाहता है कि एकबार ज़ोरसे रोदूँ, नहीं तो दुःखसे पागल हो जाऊँगा।

[हाथोंसे आँखें बन्द कर लेता है]

जनमेजय—आपकी बात सुनकर मेरा हृदय बहुत दुःखी हो रहा है। कहिये, आपके जीवनमें ऐसी कोनसी घटना घटी है, जिसका संबंध इस आश्रमसे है, और जो आपको इतना दुखी कर रही है।

मंत्री—महाराज, अगर उस घटनाका संबंध सिर्फ मेरे जीवनसे होता तो मैं आपके सामने इस प्रकार रोने न बैठता। मेरा दुःख सारी आर्यजातिका दुःख है और आर्य-जातिके प्रतिनिधि आप हैं, इसलिये आपका दुःख है। यदि आपका उस घटनासे कौटुम्बिक संबंध न होता, तो भी आर्य प्रतिनिधिकी हैसियतसे वह आपका दुःख और आपका अपमान होता।

जनमेजय—मंत्रिन्, मैं अधीर हो रहा हूँ, शीघ्र बतलाइयें; बात क्या है?

मंत्री—महाराज, इस आश्रममें एक ऐसी घटना हुई थी जिसके बहाने पापी नाग तक्षकने स्वर्गीय महाराजका वध किया था। आप बालक थे इस-लिये आर्यजाति इस अत्याचारका बदला न ले सकी तभीसे आर्य-लोग इस अपमान की आगसे जल रहे हैं। जबतक उस आगको नाग जातिकी आहुति न मिले तब तक आर्योंको चैन नहीं। महाराज, अब वह समय आ गया है। अब स्वर्गीय महाराजकी मृत्युका बदला लिया जाय।

जनमेजय—मंत्रिन्, आपने आज तक यह घटना क्यों न बताई? मेरे पिताका वध करनेवाला आरामसे जिन्दा रहे और मैं निश्चिन्ततासे राजगद्दीपर आराम करूँ इससे बढ़कर मेरी कृतघ्नता और नीचता क्या होगी? मंत्रिन्, मैं बालक था तो क्या हुआ? आखिर शेरका बच्चा था जो इन जानवरोंके लिये काफ़ी था। मेरे हृदयमें आग लगी है उस आगमें नाग जाति जल जायगी—यह आश्रम जल जायगा।

मंत्री—महाराज, आश्रमका इसमें अपराध नहीं है। स्वर्गीय महाराजने भूलसे शमीक ऋषिके गलेमें मरा साँप डाल दिया था पर, शमीक ऋषिने हृदयसे क्षमा कर दिया था। यह घरकी बात थी इससे नागोंका कोई सम्बन्ध नहीं था, पर इस बहानेसे वे लोग बीचमें कूद पड़े और शमीक ऋषिके पुत्रको फुसलाकर अपनेमें मिलाया और उसके साथ ऋषिवेषमें आकर नागोंने धोखेसे स्वर्गीय महाराजका वध कर दिया। अब आप जैसा उचित समझें करें।

जनमेजय—मैं नाग जातिको जिन्दा जलाऊँगा।

मंत्री—आपसे ऐसी ही आशा है महाराज! अपने पूर्वजोंने नागयज्ञका विधान किया है जिसमें एक विशाल कुण्डमें जिन्दे नागोंकी आहुति दी जाती है। पर आज तक इस नागयज्ञको कोई कर नहीं सका आर्योंका सिर्फ वही विधान शास्त्रोंकी कथा बनकर रह गया है। अब आर्य जनताकी दृष्टि आप पर है। आप अगर नागयज्ञ कर दिखाएँगे तो आपका नाम अमर हो जायगा और संसारका एक बड़ा भारी पाप कट जायगा।

जनमेजय—बस, अब शीघ्र लौटना चाहिये, अब आश्रममें विश्रामकी जरूरत नहीं है। मैं नागयज्ञकी तैयारी शीघ्र करना चाहता हूँ।

[प्रस्थान]

सातवाँ दृश्य

(स्थान और समय—विवाहके बीस वर्ष बाद, प्रातःकाल अरत् अभी सो रहे हैं। कारुका प्रवेश)

कारु—अरे, अभीतक ये सो ही रहे हैं प्रातःकालकी सभी क्रियाएँ बीती-चक गईं। एक प्रहर दिन चढ़ आया (जगाती है) देव, उठिये एक प्रहर दिन चढ़ आया है।

अरत्—(अलसाते हुए उठकर) ओह, आज बहुत समय बीत गया। प्रातःकालके धर्म-कार्य न हो पाये, इस प्रमादको धिक्कार है। कारु, यह बहुत बुरा हुआ।

कारु—आप कहें तो प्रतिदिन आपको ठीक समयपर जगा दिया करूँ।

अरत्—यह ठीक है पर उस समय मैं मनुष्य मिटकर सिर्फ एक यंत्र रह जाऊँगा। और यह मनुष्यताका अन्त होगा कि जो मैं करना नहीं चाहता।

कारु—देव, मैं आपकी कोई सेवा कर दूँ इसमें यंत्र होनेकी क्या बात हुई?

अरत्—तुम उठाओ तब मैं उठूँ, तुम सुलाओ तब मैं सोऊँ यह यन्त्रता नहीं तो क्या है? जड़ और चेतनमें यही तो अन्तर है कि जड़ किसीसे प्रेरित होकर कर्तव्य करता है और चेतन स्वयं कर्तव्य करता है। जो कर्तव्य नहीं करते वे वस्तु ही नहीं हैं। जो उतने बार ही कर्तव्य करते हैं जितने बार उन्हें प्रेरित किया जाय वे वस्तु तो हैं पर यंत्रके समान व्यवस्थित नहीं हैं। जो एक बार प्रेरणा पाकर कुछ देर कर्तव्यरत रहते हैं वे यंत्र हैं। जो बिना किसी प्रेरणासे कर्तव्यको जानकर करते हैं वे मनुष्य हैं। इस राजभवनमें रहकर मेरी मनुष्यता क्षीण हो गई है।

कारु—देव, आप इस तरह क्यों बोलते हैं?

अरत्—ठीक कहता हूँ कारु। मैं प्रमादी और कर्तव्य-भ्रष्ट हो गया हूँ। मैं आज सोता रहा, यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। किन्तु मेरे प्रमादी जीवनका आकस्मिक दर्शन है। मैं मनुष्य नहीं विलासका कीड़ा बन गया हूँ। प्रतिज्ञासे भ्रष्ट हो गया हूँ।

कारु—आप इस छोटीसी बातको लेकर क्यों इतने उद्विग्न हो रहे हैं?

आपका जीवन पवित्र और प्रेममय रहा है। इसमें प्रतिज्ञा-भङ्ग होनेकी बात ही क्या है?

अरस्तू—इस समय आस्तीक की उम्र क्या होगी?

कारु—उन्नीस वर्ष की।

अरस्तू—मैंने प्रतिज्ञा की थी कि पुत्रोत्पत्तिके एक वर्ष बाद मैं गृह-त्याग करूँगा। पर उन्नीस वर्ष हो गये मैं यहीं पड़ा हूँ। इससे बढ़कर प्रतिज्ञा भ्रष्टता और क्या होगी?

कारु—पर आपने तो विचार बदल दिये थे। जगतकी सेवामें में ही तप समझ लिया था।

अरस्तू—पर पलंग पर पड़े रहकर आरामसे सोनेका का नाम जगतकी सेवा नहीं है। जो आदमी यह नहीं सोचता कि आज मैंने दुनियासे जितना लिया है, उतना दिया है या नहीं। वह सेवक तो क्या मनुष्य भी नहीं है। इन बीस वर्षोंमें क्या एक दिन भी ऐसा गया है जिस दिन मैंने लेनेकी अपेक्षा अधिक दिया हो। कारु, मैं मोघजीवी (हरामखोर) बन गया हूँ। अब मुझे यहाँसे जाना होगा।

कारु—(कुछ रुलाईके साथ) देव, आप यह क्या कह रहे हैं? आपने संन्यास और व्यर्थकी तपस्याओंका त्याग कर दिया था। मानव-सेवाके कार्यमें मेरे सहयोगी बननेकी बात आप समय-समय पर कहते आये हैं फिर आज इस प्रकार क्यों भाग रहे हैं?

अरस्तू—मैं सेवाके क्षेत्रसे नहीं भाग रहा हूँ। बल्कि वहाँ प्रवेश करना चाहता हूँ। कारु, मैंने यहाँ रहकर तुम्हारे कर्तव्यमें बाधा ही डाली है। जिस शक्तिसे तुम दुनियाकी सेवा करती, उस शक्तिसे तुमने सिर्फ़ अपनी सेवा कराई है। मेरे और तुम्हारे जीवनकी सफलताके लिये मेरा बाह्य-त्याग आवश्यक है। राजमहलोंको छोड़कर मुझे अब झोपड़ियों की सुध लेना चाहिये। देवि, तुम वीरांगना हो, तुमने मुझे सेवा, मार्ग की दीक्षा दी है। इतना उच्च जीवन है तुम्हारा कि उसको देखते हुए रोना ठीक नहीं मालूम होता। तुम सरीखी वीर विदुषीसे मैं यही आशा करता हूँ कि तुम मेरे आत्म-सुधारमें साधक बनोगी।

कारु—यदि ऐसा है तो आप मुझे भी साथ ले लीजिये। विश्वास रखिये कि मैं आपको कोई कष्ट न दूँगी।

अरस्तू—अवश्य, जिस दिन मैं यह समझूँगा कि दुनिया की भलाईके लिये तुम्हारी यहाँ की अपेक्षा वहाँ आवश्यकता अधिक है, उसी समय मैं

तुम्हें बुलाने आ जाऊँगा। मैं तुम्हें छोड़ नहीं रहा हूँ, पर एक सैनिककी तरह युद्ध-क्षेत्रमें जानेके लिये तुमसे विदा माँग रहा हूँ। इसलिये 'विदा' दो देवि, अब मैं जाता हूँ।

(आस्तीक ऋषि चले जाते हैं, रानी देवी मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं, दासियाँ सँभालने लगती हैं।)

(पटक्षेप)

तीसरा अंक

पहिला दृश्य

[स्थान—जनमेजयकी राजसभा]

मंत्री—भाइयो, आप लोगोंको मालूम है कि कई हजार वर्षसे हम लोग इस देशकी सेवा कर रहे हैं और हमने यहाँकी नाग आदि जातियोंको सभ्यताका पाठ पढ़ाया है। इस देशको भूस्वर्ग बनानेके लिये हमने दिन-रात पसीना बहाया है, एक साम्राज्य स्थापित करके यहाँके आपसी झगड़ोंको मिटाया है। हमारे पितामहोंने युद्धका सदाके लिये अन्त करनेके लिये महाभारतमें लाखों प्राण गमाये थे। इस प्रकार हमारी सेवाएँ असंख्य और अमूल्य होनेपर भी पापी नागोंने हमारे स्वर्गीय महाराजका दिन दहाड़े धोखेसे वध किया था। अपमानका यह टीका आर्यजातिके सिरपर तबतकके लिये लगा गया है, जबतक आर्य जाति इसका बदला न ले ले। हमारे महाराजकी बाल्यावस्था होनेके कारण अभी तक हम लोग इस विषयमें कुछ न कर पाये, पर समय आ गया है, जब दृढ़ताके साथ हम अपना कलंक-मोचन करें। कल सन्ध्या समय जब महाराजने मुझसे स्वर्गीय महाराजके निधनका वास्तविक समाचार जाना, तभीसे महाराज बेचैन हैं, और उनने नागयज्ञ करनेका विचार किया है। हमारे शास्त्रोंमें नागयज्ञका विधान है। पर आज तक इस विधानकी पूर्ति नहीं हो पाई है। यह सुंदर अवसर हमारे सामने आ गया है। इसे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिये। नागयज्ञ करनेकी वंश-परम्परागत आकांक्षा पूर्ण करनेका हम निमित्त पा गये हैं। मैं समझता हूँ कि महाराजका यह विचार आप लोगोंको पसंद आ गया और आप लोग इसका उपाय सोचकर पूरा सहयोग प्रदान करेंगे।

एक सभासद्—हमारे सिरपर जो कायरताके कलंकका टीका बीस वर्षसे लगा हुआ है, उसे पोंछना हमारा परम कर्तव्य है। मैं मंत्री महोदयके वक्तव्यका समर्थन करता हूँ। कल ही युद्धके लिये प्रयाण करना चाहिये और युद्धमें जितने लोग जीवित या मृत मिल सकें उनकी आहुति यज्ञमें देना चाहिये।

दूसरा सभासद्—नागयज्ञका समर्थन मैं भी करता हूँ पर इसके लिये मैं युद्धका विरोधी हूँ। युद्धमेंसे मुर्दे लाना और उसका होम करना यह अपने घरमें यज्ञ करना नहीं है, किन्तु अपने घरको स्मशान बनाना है। यज्ञमें मुर्दोंसे बाजी लेनेवाले घायलोंसे यज्ञ किया जा सकता है इसके लिये तो सर्वांगपूर्ण जीवित नागोंकी आवश्यकता है।

पहिला सभासद्—पर ऐसे जीवित नाग कैसे मिलेंगे?

दूसरा सभासद्—इसका उपाय सीधा है। हमारी सेनाओंके संगठित दल नाग लोगोंके गाँवों पर धावा बोलें और जितने भी नागयुवक पकड़े जा सकें पकड़ कर यज्ञभूमिमें भेज दें।

पहिला सभासद्—पर शान्त नागरिकों पर इस प्रकार अत्याचार करना युद्ध-नीतिके सर्वथा विरुद्ध है।

दूसरा सभासद्—पर हम युद्ध कहाँ कर रहे हैं? युद्धमें युद्ध-नीतिका विचार किया जा सकता है पर यह तो यज्ञ है धर्म है, इसमें युद्धनीतिका, विचार नहीं किया जा सकता। जब हम शिकारको जाते हैं तब क्या युद्ध-नीतिका पालन करते हैं? क्या जानवर आपके सामने दल बाँधकर लड़ने निकलते हैं? क्या हम उनके घरोंपर जाकर उनके प्राण नहीं लेते? उनको कैद नहीं करते? यदि हम जानवरोंके साथ ऐसा करते हैं तो नागोंके साथ क्यों नहीं कर सकते?

पहिला सभासद्—पर नाग लोग मनुष्य हैं।

दूसरा सभासद्—मनुष्याकार होनेसे ही कोई मनुष्य नहीं हो जाता। नागोंको जानवरोंसे ऊँचा उठाकर प्रकारान्तरसे आप आर्योंका अपमान कर रहे हैं। मैं सारे सभासदोंसे पूछता हूँ कि क्या नाग लोग मनुष्याकार होनेपर भी मनुष्योंकी अर्थात् हमारी बराबरी कर सकते हैं?

सब सभासद्—नहीं, कभी नहीं।

दूसरा सभासद्—बस, तब जानवरोंकी तरह उन्हें पकड़ लानेमें युद्ध-नीतिका कोई विरोध नहीं है।

तीसरा सभासद्—मैं भी यही समझता हूँ। युद्ध करनेमें हमें संभवतः नागोंका मुकाबिला करना पड़ेगा। युद्धमें किसकी जीत हो किसकी हार हो इसका क्या ठिकाना! और कुछ न होगा तो जहाँ दो नाग मरेंगे वहाँ पचास आर्य भी मरेंगे। हम पचास आर्योंकी मौतके कारण क्यों बनें? इसलिये हमें नागोंपर अचानक धावा करके ही जानवरोंकी तरह उन्हें पकड़कर लाना चाहिये।

मंत्री—मैं समझता हूँ कि सभाकी यही इच्छा है। मैं भी इसी नीतिको पसंद करता हूँ।

दूसरा सभासद्—पर इसके लिये हमें योग्य ऋषियोंका सहयोग प्राप्त कर लेना चाहिये, नागयज्ञ हर तरह पूरा यज्ञ होना चाहिये। वह सिर्फ सुनावट ही बनकर न रह जाये इसलिये होता, उद्गाता, ब्रह्मा, अध्वर्यु और सदस्योंके रूप में अच्छे अच्छे ऋषियोंका प्रबन्ध होना चाहिये जिनका मन मज़बूत हो।

मंत्री—आप लोग इसकी चिन्ता न करें। इस महायज्ञमें च्यवनवंशी प्रसिद्ध वेदज्ञ श्रीमान चण्डभार्गवजीने 'होता' बनना स्वीकार किया है (तालियाँ)। वृद्ध और परम विद्वान श्री कौत्सजीने 'उद्‌गाता' होना स्वीकार किया है (तालियाँ)। मुनिश्रेष्ठ जैमिनिजी 'ब्रह्मा' बनेंगे (तालियाँ)। श्री शार्ङ्गरव और पिंगल मुनिने 'अध्वर्यु' होना स्वीकार किया है (तालियाँ)। और श्री उद्दालक, प्रमत्तक, असित, देवल, देवशर्मा, मौद्गल्य आदि प्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान 'सदस्य' बनेंगे (तालियाँ)। इन सबने प्रसन्नतासे सहयोग देना स्वीकार किया है। आप विश्वास रखिये हमारे विद्वान इतने भीरु नहीं हैं कि नागोंका रोना चिल्लाना सुनकर या उनको आगमें तड़पते देखकर घबरा जायें। वे दृढ़तामें वज्रको भी जीत सकते हैं (तालियाँ)।

दूसरा सभासद्—महाराज जनमेजय की...

सब सभासद्—जय।

दूसरा सभासद्—नाग-वंशका...

सभासद्—क्षय।

[पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

[स्थान—वन-पथ : एक वृद्ध दम्पति अपने जवान लड़के और एक छोटी लड़कीके साथ जा रहे हैं। दम्पति थककर बैठ जाते हैं]

वृद्ध—बेटा, अब तो नहीं चला जाता, कहाँ तक चलें और कहाँ जायँ ?

वृद्धा—बेटा, कोई ऐसी जगह देख, जहाँ जनमेजय न लगे, जिस गाँवको जनमेजय लगा वह उजड़ गया। वहाँ उल्लुओंकी बस्ती हो गई। इससे तो इसी जंगलमें रहना अच्छा है।

युवक—माँ, पर जनमेजय तो जंगलोंको भी लग रहा है। जंगलमें झोपड़ियाँ बनाकर रहनेवाले न जाने कितने किसान जनमेजयके शिकार हो गये हैं।

वृद्धा—हे भूतनाथ महाराज, तुम कहाँ हो ? जनमेजय पिशाच गाँवों, नगरों और जङ्गलोंको भी लग रहा है और तुम्हारा त्रिशूल उस पापीके सिर पर नहीं गिरता।

युवक—माँ, शंकरजी की योगनिद्रा टूटते ही उस पापीका जल्दी अन्त हो जायगा।

वृद्धा—बेटा, शंकरजीको दिनमें तीन बार जल चढ़ाया कर, जिससे उनकी योगनिद्रा जल्दी छूट जाय।

लड़की—जल तो मुझे भी चाहिये माँ, बड़ी प्यास लगी है।

युवक—बहिन, मैं ला देता हूँ, अभी जङ्गलमें जल कहीं मिलही जायगा।

वृद्ध—नहीं बेटा, अकेला जङ्गलमें मत जा, वहाँ जनमेजय लग जायगा।

लड़की—नहीं भैया, मुझे प्यास नहीं है। तुम अकेले मत जाओ, वहाँ जनमेजय लग जायगा।

युवक—(हँसकर) तू जानती है जनमेजय क्या है ?

लड़की—वह एक पिशाच है भैया, वह जिसे लगता है वह आगमें जल जाता है।

युवक—पर मैं तो पानी लेने जाता हूँ, वहाँ आग कहाँसे आई ?

लड़की—नहीं भैया, जनमेजय तो पानीमें भी लग जाता है। मैं पानी नहीं पियूँगी।

(एक पथिकका प्रवेश, वह उनके हाथमें पानीसे भरा लोटा देता है।)

पथिक—ले बहिन, इस पानीमें जनमेजय नहीं रहा है, यह पी ले।

लड़की—(पिताकी तरफ) पिताजी, इस पानीमें तो जनमेजय नहीं है!

वृद्ध—नहीं है बेटी, वह पिशाच इसमें नहीं है। (लड़की पानीका लोटा लेती है और गौरसे पानीको देखती है, फिर घबरा कर लोटा वापिस कर देती है।)

लड़की—इसमें किसीका चेहरा नच तो रहा है।

पथिक—नहीं बहिन, वह तो तेरी ही छाया होगी। मैंने तो इस लोटेसे बहुत पानी पिया है। इसमें जनमेजय नहीं है।

(नेपथ्यमेंसे आवाज आ जाता है 'अरे ओ जनमेजयके बच्चे' सब उसी ओर देखने लगते हैं। दूसरे पथिकका प्रवेश)

दूसरा पथिक—मैं प्याससे मर रहा हूँ और तू पानीका लोटा लेकर यहाँ भाग आया।

(पहिला पथिक दूसरे पथिकको मारने दौड़ता है।)

पहिला पथिक—सिर तोड़ दूँगा, अगर ऐसी गाली दी तो।

दूसरा पथिक—गाली न दूँ तो क्या करूँ? मैं प्याससे मर रहा हूँ और तू लोटा लेकर चला आया।

पहिला पथिक—गाली देना है तो तू गधेका बच्चा कह, उल्लूका बच्चा कह, सुअरका बच्चा कह, पिशाचका बच्चा कह, यह मैं सब सह लूँगा; पर जनमेजयका बच्चा कहा तो सिर तोड़ दूँगा। (वृद्धकी तरफ मुँह करके) देखो दादा, कोई इतनी खराब गाली सह सकता है?

वृद्ध—(दूसरे पथिकसे) भैया, गुस्सा सदा रोकना चाहिये। गाली देना अच्छा नहीं होता। फिर अगर कभी मुँहसे गाली निकल ही पड़े तो दुनियामें एकसे एक बढ़कर खराब गालियाँ पड़ी हैं। देना है तो दे डाल, पर 'जनमेजयके बच्चे'की गाली मत दे। अगर किसी पिशाचको भी ऐसी गाली दो तो, वह भी न सहेगा फिर यह तो आदमी है।

दूसरा पथिक—पर मैंने तो हँसीमें वह गाली दी थी।

वृद्ध—हँसीकी भी मर्यादा होती है बेटा। हँसीमें थपथपाना अच्छा मालूम होता है पर किसीके पेटमें कटारी ठूँसना हँसी नहीं है। हँसीमें और सब गालियाँ दी जा सकतीं हैं, पर 'जनमेजयका बच्चा' नहीं कहा जा सकता।

दूसरा पथिक—कान पकड़ता हूँ दादा [अपने कान पकड़ता है] अब कभी किसीको इतनी खराब गाली नहीं दूँगा ;

[नेपथ्यमें कोलाहल सुनाई देता है। सब चौकन्ने होकर सुनने लगते हैं। फिर आवाज़ आती है ' भागो भागो इस जंगलको जनमेजय लग रहा है, आवाज़ सुनकर दोनों पथिक चिल्लाते हैं ' भागो भागो ' और भाग जाते हैं।]

वृद्ध—बेटा, उनके साथ तू भी भाग जा।

युवक—नहीं पिताजी, आपको छोड़कर मैं भाग जाऊँ तो मुझे धिक्कार है।

वृद्धा—हम लोगोंकी चिन्ता न कर बेटा। हमारा क्या ! हम तो मौतके किनारे बैठे हैं। कल नहीं, आज गये। तू बचा रहेगा तो हमारा वंश बचा रहेगा—हम बचे रहेंगे।

युवक—मनुष्यता खोकर अगर मैं बचा ही रहा तो इसमें वंशकी क्या शोभा है ? जानवर बनकर जीने की अपेक्षा मनुष्य बनकर मरना हज़ार गुन अच्छा है। मैं नहीं जाऊँगा माँ।

[जनमेजयके सैनिकोंका प्रवेश। वे युवकको पकड़ते हैं। युवक हाथ छुड़ाता है। थोड़ी झपाझपीके बाद वे युवकको पकड़ लेते है और ले जाना चाहते है, वृद्धा युवकका कंधा पकड़ लेती है। बहिन भी कमरसे लिपट जाती है।]

वृद्धा—इसे मत ले जाओ, मेरा एक ही बेटा है।

लड़की—भैया, भैया, (रोती है)

(सैनिक, उसे युवकको माँ-बेटीसे छुड़ानेकी कोशिश करते हैं, पर दोनों इस तरह चिपट जाते हैं कि छुटाये नहीं छूटतीं। तब सैनिक, युवकको घसीटकर लेजाते हैं और माँ-बेटी भी घिसटती जाती हैं। साथ ही रोती-चिल्लाती भी जाती हैं। उनके पीछे पीछे वृद्ध भी रोता जाता है और कहता है-।)

वृद्ध—बेटा, आखिर तुझे जनमेजय पिशाच लग ही गया।

तीसरा दृश्य

(स्थान—इन्द्रसभा। आनन्द-गान)

गीत ८

काली-काली कोइलिया कूज रही कुंजनमें, गूँज रहे भौंरे हज़ार।
मंद-मंद चलती बयार ॥ १ ॥

अणु-अणु में गूँज रहा प्रेमका संगीत ध्वनि, झनक रहे वीणाके तार ।
तार-तार, सुमनोंके हार ॥ २ ॥

चम्पा भी फूल रहा, बेला भी फूल रहा, फूल रहे कुन्द डार डार ।
कुंज कुंज आई बहार ॥ ३ ॥

लोल लोल लतिकाएँ लोट रहीं तरुओं पै, तरुओंका पाया दुलार ।
अंग-अंग छाया है प्यार ॥ ४ ॥

नाचते मयूर कहीं नाचतीं लताएँ कहीं, झूम रहीं सुमनोंके भार ।
अंग-अंग शोभा अपार ॥ ५ ॥

वैर-भाव नष्ट हुआ, दूर दुःख, कष्ट हुआ, प्रेम राज आया द्वार द्वार ।
आज दिखा जीवनमें सार ॥ ६ ॥

(गीतके बाद द्वारपालका प्रवेश)

द्वारपाल—महाराज नागलोकसे तक्षकजी आये हैं ।

इन्द्र—उनको आदर सहित यहाँ भेजो ।

(द्वारपालका प्रस्थान)

इन्द्र—बहुत दिनोंसे मध्य और पाताल लोकके समाचार नहीं मिले । आज कुछ नये समाचार मिलने की आशा है ?

मंत्री—अब तो त्रिविष्टपका और आर्यावर्तका सम्बन्ध ही टूटता जाता है ।

इन्द्र—सिर्फ संकटके समय त्रिविष्टप याद आता है ।

(तक्षकका प्रवेश, तक्षक इन्द्रको प्रणाम करता है और इन्द्रके इशारेसे आसन पर बैठता है ।)

इन्द्र—कहिये नागराज, आज कैसे पधारे ?

तक्षक—महाराज, प्राण-रक्षाके लिये आपकी शरणमें आया हूँ ।

इन्द्र—त्रिविष्टपकी शक्तियाँ आश्रित जनके रक्षणके लिये सदा तैयार हैं, इसलिये आप निर्भय हैं । पर सुनूँ तो, बात क्या है ?

तक्षक—महाराज ! आर्य लोग शताब्दियोंसे नागोंपर अत्याचार करते आ रहे हैं । पर अबकी बार जो अत्याचार वे कर रहे हैं, ऐसा अत्याचार न तो कभी किसीने किया है, न कोई करेगा ।

इन्द्र—इसमें सन्देह नहीं कि आर्योंका उन्माद बढ़ गया है। अब तो वे धीरे-धीरे त्रिविष्टपसे भी संबंध तोड़ते जा रहे हैं।

तक्षक—तभी तो वे निरंकुश अत्याचारी हो गये हैं। उनने हमारे सैकड़ों गाँव नष्ट कर दिये—हजारों युवकोंको जिन्दा जला दिया और उनने निश्चय किया है कि जब तक वे मुझे न जला देंगे तब तक चैन न लेंगे।

इन्द्र—क्या आर्य लोग मनुष्योंको जिन्दा जलाते हैं! यह वीरता नहीं, क्रूरता है।

तक्षक—यह क्रूरता धोखेबाजीके साथ होनेसे और भी घृणित हो गई है। आर्य लोग युद्ध नहीं करते, किन्तु डाकुओंकी तरह गाँवोंपर छापा मारते हैं। और जितने युवक मिलते हैं पकड़ लेते हैं फिर राजधानीमें ले आकर उन्हें जला देते हैं। इस हत्याकांडका नाम रक्खा है ‘नागयज्ञ’। ढोंग भी यज्ञका पूरा किया है। होता, उद्‌गाता, आदि सब बनाये गये हैं।

इंद्र—नागराज, आपकी ये बातें सुनकर मुझे बहुत खेद हो रहा है। आर्यावर्तमें यज्ञ हो और मुझे निमंत्रण भी न मिले। उसकी सूचना भी न मिले यह आश्चर्यकी बात है। आर्योंकी यह कृतघ्नता असह्य है। आर्योंको, खासकर जनमेजयके पूर्वजोंको त्रिविष्टपसे सदा सहायता मिली है और आज ये लोग इतनी नीचतापर उतारू हो गये हैं। खैर, आप यहाँ आरामसे रहिये। आर्य लोग आपका यहाँ कुछ भी नहीं कर सकते।

तक्षक—महाराज, मैं सिर्फ अपनी रक्षा ही नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि यह नागयज्ञ बंद हो। आज तक ऐसा कोई यज्ञ नहीं हुआ जिसमें आपको निमंत्रण न मिला हो, पर इस यज्ञमें आपका पूरा अपमान हुआ है। दूसरी बात यह है कि आजतक यज्ञके लिये मनुष्योंका इस प्रकार शिकार नहीं हुआ, इसलिये यह यज्ञ पापरूप है। ऐसे पाप-यज्ञका बंद करना आपका परम कर्तव्य है।

इंद्र—मैं यह अन्याय सहन नहीं कर सकता। इसे रोकनेकी और अपराधियोंको दण्ड देनेकी मैं पूरी चेष्टा करूँगा। समय कितना भी बदल गया हो पर आज भी मेरे हाथमें वज्र है।

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

[स्थान—वन-पथ : कारु और आस्तीक का प्रवेश]

आस्तीक—माँ, यह क्रूरता असह्य हो रही है। मैं समझ ही नहीं पाता कि मनुष्य इतनी निर्दयता कैसे कर सकता है !

कारु—बेटा, मनुष्य संसारका सबसे क्रूर जानवर है। सिंह स्वाभाविकी क्रूरता इसके आगे किसी गिनतीमें नहीं। सिंह जानवरोंको मारता है फिर भी विवेक रखता है। वह सिर्फ पेट भरनेके लिये जानवर मारता है। पेट भरनेपर उसकी हिंसकता शान्त हो जाती है, परन्तु मनुष्यका पेट कभी नहीं भरता। वह संग्रह करता है और उसको बढ़ानेके लिए जीवनभर हिंसा करता है। सिंह अपनी जातिके जानवरका शिकार कभी नहीं करता, परन्तु मनुष्य मनुष्यका शिकार करता है। ऐसा मालूम होता है कि सिंहादि क्रूर जानवरोंको भी प्रकृतिने जो विवेक दिया है मनुष्यने अपनी बुद्धिसे उसका भी नाश कर दिया है।

आस्तीक—माँ, मनुष्यकी यह पशुता जाना चाहिये।

कारु—मनुष्यमें अगर यह पशुता ही होती तो भी गनीमत थी। वह पेट भरनेके लिये ही पाप करता। वह परिमित और परिहार्य होता, परन्तु मनुष्यमें पशुताके साथ पैशाचिकता है। वह रोटीके नामपर सार्थक पाप ही नहीं करता; पर धर्म, सभ्यता, संस्कृति, जाति आदिके नामपर निरर्थक पाप भी करता है। कुछ मनुष्य आर्य कहलाते हैं, कुछ मनुष्य नाग कहलाते हैं; इसलिये दोनों एक दूसरेके खूनके प्यासे हैं। आज आर्योंकी बारी है, इसलिये वे ऐसा भयंकर अत्याचार कर रहे हैं—जैसा आज तक किसीने नहीं किया और भविष्यमें कदाचित् कोई न कर सकेगा।

आस्तीक—माँ, ऐसा लगता है कि मैं आर्योंकी इस पैशाचिकताको नष्ट करनेके लिये अपने प्राण लगा दूँ। जब एक तरफ मनुष्य इस प्रकार जानवरोंकी तरह नष्ट हो रहे हों और दूसरी तरफ इस प्रकार पैशाचिकता दिखा रहे हों तब मेरा चैनसे बैठना लज्जास्पद है।

कारु—बेटा, मैंने तेरे ही लिये अपने जीवनमें यह परिवर्तन किया है और एक आर्य ऋषिके साथ इसीलिये विवाह किया था कि उससे कुछ

सबोंकी संतान पाकर हम लोग आर्यों और नागोंके मिलनेके लिए एक प्रेमसूत्र दे सकें। बेटा, तुझसे मैं ऐसी ही आशा करती हूँ।

आस्तीक—माँ, मैं तुम्हारे आशीर्वादसे अवश्य ही तुम्हारी आशा पूरी करूँगा।

कारु—तभी तेरा और मेरा जीवन सार्थक होगा बेटा। मैं तुझे इसीलिये लाई हूँ कि तू मनुष्यकी पैशाचिकताके दर्शन कर सके।

(एक तरफसे प्रस्थान और दूसरी तरफसे जरत्का प्रवेश)

जरत्—सेवाका मार्ग कठिन है। मुक्तिके लिये गृहत्याग कितना सरल था! उस समय आर्य भी सिर झुकाते थे और नाग भी। मैं जगतको कुछ नहीं देता था पर जगत सब कुछ मुझे देता था। पर आज जब मैं दंभ छोड़कर जगतकी सेवा करने चला, सर्वस्वके साथ जब वाहवाही और पूजा-सत्कारका त्याग कर जगतको सुखी बनानेके लिये सारी शक्ति लगाई, तब चारों तरफ़से तिरस्कार की वर्षा हो रही है। बड़ीसे बड़ी विपत्तियोंको सहना सरल है। प्रलोभनों पर भी विजय पाई जा सकती है, पर जगत्का यह अन्धेरा सहना कठिन है। इसीलिये जगतमें सैकड़ों मुक्तात्मा हैं। पर मुक्त सेवक ढूँढे भी नहीं मिलते। देवी कारु जो साधना कर रही हैं, वैसी साधना कितने मुक्तात्मा कर पाते हैं। मनुष्य मनुष्यके खूनका प्यासा है, वह मनुष्य होकर भी पिशाच बन रहा है। उसकी पैशाचिकता दूर करनेके लिये—आर्यों और नागोंको मनुष्य बनानेके लिये—कारुके जीवनका क्षण-क्षण जाता है मैंने भी उससे यही पाठ सीखा है। पर कितना कठिन है यह पाठ! ऋषि, तपस्वी और जिन बनना सरल है, पर सच्चा जन-सेवक बनना कितना कठिन है! चुपचाप जीवनका बलिदान किये बिना इस पथ पर सफलतासे नहीं चला जा सकता! ईश्वर, मुझे मर मिटनेका बल दे।

[प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—एक नाग गृहस्थका घर। युवक पुत्र बीमार होकर खाटपर पड़ा है। उसकी विधवा माता सिरहाने बैठी है, बहिन उत्सुकतासे रोगीकी तरफ देख रही है।]

माँ—बेटा, कैसी तबियत है!

युवक—क्या बताऊँ माँ, अंग अंगमें बड़ा दर्द हो रहा है, सिर फटा जा रहा है और चिन्ताके मारे और भी बेचैनी है।

माँ—बेटा, चिंता न कर। पहिले बीमारी हट जाने दे फिर चिन्ता करते रहना।

युवक—चिन्ता क्यों न हो माँ। आज पंद्रह दिन हो गये मैं खाटपर पड़ा हूँ। घरमें खानेको कौन लायेगा? लकड़ियाँ भी न होंगी, कैसे काम चलेगा!

माँ—हम लोग सब कर लेंगे बेटा, लकड़ियाँ तो सुपर्णा बटोर लाई थी। मुट्ठी, दो-दो मुट्ठी अनाजसे गुजर कर रही हूँ।

युवक—इस जनमेजय पिशाचने सत्यानाश कर दिया माँ, नहीं तो गाँववाले सब कर देते। मैं सबके काम आता हूँ फिर सब मेरे काम क्यों न आते माँ? फिर क्या मेरी सुपर्णा बहिनको लकड़ियाँ लाना पड़तीं?

[सुपर्णाका हाथ पकड़ लेता है और रोने लगता है।]

माँ—भाग्यपर किसका वश है बेटा। बेचारे पड़ोसी क्या करें। सब जंगलोंमें भाग गये हैं, न जाने कब कहाँसे यमदूत की तरह जनमेजयके सिपाही आ जायँ। सब व्यापार-रोजगार खेती-बाड़ीका नाश हो गया।

युवक—देख माँ, मेरी बहिनके हाथमें लकड़ीकी खरोंच लग गई है, खून आ गया है। माँ, मेरे जीते-जी तुम दोनोंका यह कष्ट देखा नहीं जाता। पिताजी कैलाश पर बैठे-बैठे क्या कहते होंगे कि बेटा जाया, पर किसी काम न आया।

सुपर्णा—भैया, तुम यह सब क्या कहते हो? बीमारी सबको आती है और जिंदगीमें सबको सभी काम करना पड़ते हैं। इसमें आपत्ति क्या है? क्या मैं इतनी भी मिहनत नहीं कर सकती?

माँ—बेटा, किसी तरह तू अच्छा हो जा फिर सब ठीक हो जायगा।

युवक—माँ, मुझे ठीक होनेकी चिंता नहीं है पर डर है कि मुझे जनमेजय लग जायगा। मरनेकी चिंता नहीं, पर मेरे पीछे तुम्हारी सेवा कौन करेगा?

माँ—बेटा, ऐसी अपशकुनकी बातें न कह। जनमेजय किसी पापीको भी न लगे।

युवक—माँ, आर्योंने हमारे देशका नाश कर दिया। इन जंगलियोंने अपने पशुबलसे हमारी उच्च सभ्यताको बर्बाद कर दिया। इन्हें कला-कौशल

और सभ्यता हमने सिखाई। पर ये कृतघ्न निकले। सवेरेसे किसी पिशाचका मुँह दिख जाना अच्छा, पर किसी आर्यका मुँह दिखना अच्छा नहीं।

माँ—अब शंकरजीकी योगनिद्रा जल्दी ही खुलेगी और ये पापी अपना फल चखेंगे।

युवक—शंकर-शंकर, जागो महादेव! माँ, प्यास लगी है।

सुपर्णा—मैं पानी लाती हूँ भैया।

[पासमें रखे हुए मिट्टीके घड़ेसे सुपर्णा सकोरेमें पानी लेती है और युवकके हाथमें देने लगती है। इतनेमें जनमेजयके सिपाहियोंका प्रवेश होता है। उनको देखकर सुपर्णा चीख उठती है। उसके हाथका सकोरा छूटकर गिर पड़ता है। पानी बह जाता है।]

सिपाही—आखिर यहाँ भी एक यज्ञपशु मिल ही गया।

(सुपर्णा और उसकी माँ रोने लगती हैं, वे युवककी खाटको ओटमें करके खड़ी हो जाती हैं। सिपाही उन्हें धक्का देकर, युवकको पकड़ लेते हैं। युवक बीमारीमें भी उत्तेजित होकर उठ बैठता है, और जोशमें एक सिपाहीको इतने ज़ोरसे धक्का देता है कि सिपाही गिर पड़ता है। पर बाकी सिपाही उसके हाथ रस्सीसे बाँध देते हैं और दो-चार मुक्के जमाते है।)

सिपाही—अगर तू यज्ञका जानवर न होता तो तेरे अभी टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते।

माँ—(सिपाहियोंसे) भैया, मेरे एक ही बेटा है और पंद्रह दिनसे बीमार है।

सिपाही—तो बीमार बच्चेका क्या करोगी? हम लोग ले जाकर उसकी बीमारी ही दूर न कर देंगे, पर उसका यह पशु-शरीर भी छुड़ा देंगे। (सब सिपाही आपसमें हँसते हैं)

माँ—ऐसा न कहो भैया, तुम्हारे भी बच्चे होंगे। वे भी बीमार पड़ते होंगे; पर उनकी बीमारी कोई इस तरहसे दूर करे तो तुम्हें कैसा लगे?

सिपाही—चल, बक-बक मत कर, हमारे भी बच्चे होंगे! और उनकी बीमारी कोई इस तरह दूर करेगा? अगर दूसरी बार इस तरहकी बात निकाली तो तेरी जीभ निकाल ली जायेगी।

मा—भैया, दया करो हम अभागिनोंको और न सताओ मेरे बुढ़ापेकी लकड़ी यही है।

सिपाही—चल, तो यह लकड़ी छोड़ दे और लड़कीको लेकर घर बैठ।

(युवकको खींचकर ले जाना चाहते हैं। माँ-बेटी उसे पकड़कर रह जाती हैं। सिपाही उसे छुड़ानेकी कोशिश करते हैं। पर जब नहीं छूटता, तब वृद्धाको और उसकी लड़कीको हण्टर मारते हैं। इसी समय अरत्‌का प्रवेश)

अरत्—ख़बरदार, अगर आगे हाथ बढ़ाया तो। तुम लोग पुरुष होकर भी निरपराध नारियोंपर हाथ उठाते हो! तुम्हें शर्म नहीं आती!

सिपाही—(अरत्‌को प्रणाम करके) ऋषिराज, हम क्या करें? हम तो सिर्फ़ इस यज्ञपशुको ले जाना चाहते हैं; पर ये दोनों इसमें बाधा डालती हैं। हम लोग कबतक इन्हें मनावें? हमें तो थोड़े ही दिनोंमें हजारों यज्ञपशु इकट्ठे करना है।

अरत्—तुम मनुष्यको पशु कहते हो, निरपराधोंका खून करते हो, नारियोंपर अत्याचार करते हो, क्या यह तुम्हारी मनुष्यता है?

सिपाही—महाराज, आप किसी तपस्यामें लीन रहे हैं, इसलिये आपको मालूम नहीं है कि अपने सम्राट् जनमेजय पवित्र नागयज्ञमें दीक्षित हुए हैं, उन्हींकी आज्ञासे ये नागपशु इकट्ठे किये जाते हैं।

अरत्—जानता हूँ, सब जानता हूँ। उस आर्य-कुल-कलंक जनमेजयको जानता हूँ। वह संसारका सबसे बड़ा कसाई है—पिशाच है।

सिपाही—आप आर्य ऋषि होकर भी अपने सम्राट्‌के विषयमें ऐसा क्यों कहते हैं?

अरत्—बस, मुझे आर्य ऋषि मत कहो। एक दिन मैं आर्य ऋषि कहलानेमें गौरव मानता था, पर अब तुम्हारी करतूतें देखकर आर्य कहलानेकी अपेक्षा पिशाच कहलाना अधिक पसन्द करूँगा।

सिपाही—तो क्या आप आर्य कुलमें पैदा होकर अपनेको आर्य भी नहीं मानना चाहते?

अरत्—नहीं।

सिपाही—बड़े खेद की बात है। अस्तु, आप की इच्छा, पर अब आप हमारे काममें बाधा न डालिये।

अरत्—मेरे जीते-जी तुम लोग इस युवकको नहीं ले जा सकते।

सिपाही—आप हठ न कीजिये। हम लोग ब्रह्महत्यासे डरते हैं, इसलिये आपसे प्रार्थना करते हैं—आप हट जाइये। आप आर्य-कुलमें पैदा हुए हैं,

ब्राह्मण हैं, ऋषि हैं, और हमारे पूज्य हैं। फिर भी हम लोग अपने कार्यमें आपकी बाधा नहीं सह सकते।

जरत्—अरे धर्म नाम को कलंकित करने वाले पापियो, तुम इस कसाई-कामको धर्म कहते हो? जरा शर्म करो, तुम्हारी जीभमें कीड़े पड़ जायँगे।

सिपाही—बस आप चुप रहिये। यज्ञपशुको ले जाने दीजिये।

जरत्—नहीं ले जा सकते।

(सिपाही युवकको खींचते हैं और जरत् ऋषि सिपाहीका गला पकड़ लेते हैं। एक सिपाही उन्हें डरानेके लिये कटार दिखाता है। जरत् ऋषि झपटकर उसकी कटार छीन लेते हैं और उससे एक सिपाहीके गलेपर वार करते हैं। सिपाही घायल होकर गिर पड़ता है। दूसरे सिपाही वार करते हैं, अन्तमें जरत् घायल होकर गिर पड़ते हैं। युवक छूट जाता है, वह सिपाहियोंपर आक्रमण करता है; पर अन्तमें वह घायल होकर गिर पड़ता है।)

सिपाही—हाय! हाय!! ब्रह्महत्या भी हो गई और यज्ञपशु भी बेकाम। होगया।

(सिपाही घायल साथीको लेकर चले जाते हैं)

माँ—हाय, ऋषिराज, तुमने आर्य ऋषि होकर भी हम नागोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण दे दिये।

जरत्—बहिन, मेरा जीवन सार्थक होगया।

युवक—माँ, मुझे जरा उठाओ।

[माँ और सुपर्णा युवकको उठाती हैं, युवक धीरे धीरे खिसककर जरत् ऋषिके पैरोंपर अपना सिर रख देता है और पैरोंपर सिर रक्खेही लेट जाता है]

ऋषिराज, मुझे क्षमा करो। मैं जनमेजयकी नरपशुतासे चिढ़कर सारी आर्य-जातिको ही नरपशु समझता था। पर अब इस भूलके लिये क्षमा चाहता हूँ। अगर आर्य जातिमें जनमेजय सरीखे नरपशु हैं तो आप सरीखे दिव्य पुरुष भी हैं। आपके माता-पिता धन्य हैं, आर्य जाति धन्य है।

[कारु और आस्तीकका प्रवेश]

कारु—देखो बेटा, इस घरको आर्योंने स्मशान बना दिया।

[कारुको देखकर सुपर्णा और उसकी माँ करुण विलाप करने लगती है]

सुपर्णा—(कारुसे) माँ, हम अनाथ हो गये।

माँ—और हमारे पीछे इन ऋषियोंके भी प्राण गये।

कारु—(जरत् ऋषिको देखकर और चकित होकर) आर्यपुत्र, आप यहाँ कहाँ ?

सुपर्णा—माँ, सिपाहियोंसे भैया की रक्षा करनेमें इन्हें पापी सिपाहियोंने घायल कर दिया।

कारु—नाथ, आपने यह क्या किया ?

जरत्—मनुष्य-जीवन सफल बनाया देवि, आर्य जातिके पापोंका थोड़ा प्रायश्चित्त हो गया। रेशमके बिस्तर पर मरनेकी अपेक्षा आज की यह वीर-शय्या अधिक संतोषप्रद है।

कारु—(रोने लगती है) नाथ, पर आप मुझे इस प्रकार मँझधारमें क्यों छोड़ जाते हैं !

जरत्—दुःख न करो देवि, मेरा रक्त आर्यों और नागोंको मिलानेमें सहायक होगा।

आस्तीक—पिताजी, पर आपने इस तरह अज्ञातवास क्यों किया ?

जरत्—अज्ञातवास न किया होता बेटा, तो घरमेंही कीड़े की मौत मर गया होता। पर आज यह कितना बड़ा सौभाग्य है कि वीरशय्यापर पड़ा-पड़ा मर रहा हूँ। और इस समय भी तुझे और तेरी माँको देखकर पूर्ण सुखका अनुभव कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि तू मेरे और अपनी माँके अधूरे कामको पूरा करेगा।

आस्तीक—पिताजी, आप विश्वास रखिये कि मैं इस पापका सदाके लिये अन्त कर दूँगा। अगर न कर सकूँगा तो शीघ्र ही स्वर्गमें आकर आपसे उपाय पूछूँगा।

जरत्—धन्य, सं...तु...ष्ट...हु...आ।

(जरत् ऋषिकी मृत्यु, कारुका बेहोश हो जाना, सबका कारु को सम्हालना)

(पटाक्षेप)

छट्ठा दृश्य

(इन्द्र और तक्षक टहल रहे हैं)

तक्षक—देवराज, मैं बहुत बेचैन हूँ। रातभर मुझे नींद नहीं आती। मेरी जातिके सैकड़ों-हजारों मनुष्य अग्निमें जिन्दे जलाये जाते हैं। उनका

करुण क्रन्दन मानो मेरे कानोंके पास गूँज रहा है और उससे मेरे कान फटे जा रहे हैं। इसका शीघ्र उपाय कीजिये देवराज!

इन्द्र—आर्योंकी इस कृतघ्नता और त्रिविष्टपके विषयमें लापर्वाही देखकर मैं स्वयं चिन्तित हूँ। मैं शीघ्र ही कुछ न कुछ उपाय करूँगा। तब तक आप सुरक्षित हैं।

तक्षक—मेरी सुरक्षाका कुछ अर्थ नहीं है देवराज, मेरा एक-एक घड़ीका जीवन सैकड़ों लोगोंके प्राण ले रहा है। इसकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि मैं स्वयं जनमेजयके सामने उपस्थित हो जाऊँ। मैंने सुना है कि मुझे जला देनेके बाद जनमेजय यज्ञ बन्द कर देगा।

इन्द्र—पर इससे नाग जातिकी इज्जतको बहुत धक्का लगेगा।

तक्षक—पर इस तरह तो सारी नागजाति समाप्त हो जायगी, फिर इज्जत किसके लिये बचेगी?

इन्द्र—पर मेरी शरणमें आकर भी इस तरह निराश होकर चला जाना पड़े, यह त्रिविष्टपकी इज्जतको भी बड़ा भारी धक्का है।

तक्षक—पर त्रिविष्टपको धक्का लगनेकी अपेक्षा मनुष्यताको जो धक्का लग रहा है वह इससे भी बहुत बड़ा है।

इन्द्र—(कुछ ठहरकर और निराशासे गहरी स्वाँस लेकर) भाई, मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा हूँ। मैं समझ नहीं सकता कि क्या करूँ? ऐसा मालूम होता है कि त्रिविष्टपके भी अन्तिम दिन आ गये हैं।

तक्षक—यज्ञके नामपर चलनेवाले इस हत्याकांडको अगर आप न रोक सके तो त्रिविष्टपका नाम सदाके लिये लुप्त हो जायगा।

(इन्द्र फिर विचारमें पड़कर स्तब्ध हो जाते हैं)

तक्षक—अच्छा तो विदा दीजिये, देवराज!

इन्द्र—नहीं भाई, मैं इस तरह विदा नहीं दे सकता। तुम्हारी विदाई मेरे प्राणोंकी विदाई है।

तक्षक—पर अब मेरे सामने दूसरा कोई रास्ता नहीं है, मुझे जाना ही होगा।

इन्द्र—(कुछ विचार कर) ठीक है, कोई दूसरा रास्ता नहीं है। तुम्हें वहाँ पहुँचना ही चाहिये। पर साथमें मैं भी चलूँगा। देखूँ आर्य लोग कितने कृतघ्न हो गये हैं! जो आर्य-सम्राट होकर भी एक दिन त्रिविष्टपके द्वारपर भिखारीके समान आते थे। वे आज अपने द्वारपर इन्द्रको देखकर क्या करते हैं?

तक्षक—कृतार्थ हुआ देवराज, अब मेरी रक्षा हो या न हो, पर आपके उपकारका मैं ऋणी हूँ।

(प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—जनमेजयकी यज्ञभूमि। यज्ञका कार्य शुरू होनेवाला है। नेपथ्यमेंसे कुछ ऐसा प्रकाश आ रहा है, मानों वहाँ अग्नि जल रही है। इतनेमें ऋषि लोग आते हैं, अपने-अपने स्थानोंपर बैठ जाते हैं।)

देवशर्मा—होता जी, यह हत्याकांड कब तक चलेगा ?

चण्डभार्गव—जब तक नागजाति नामशेष न हो जायगी।

पिंगल—मैं तो नहीं समझता कि इस तरह नागजाति नामशेष हो जायगी। यद्यपि हजारों नाग जला दिये गये हैं, पर लाखों मौजूद हैं। सुनते हैं कि नागोंने भी सैनिक संगठन किया है और वे आर्य-सैनिकोंको मारते भी हैं।

देवशर्मा—समाचार तो यह भी है कि कुछ आर्य-ऋषि भी नागोंकी रक्षामें प्राण लगा रहे हैं। सैनिकोंने कहा है कि एक नागके घरमें उन्हें एक आर्य-ऋषिका विरोध सहन करना पड़ा। आखिर हम लोग उस नागयुवकको नहीं ला सके।

पिंगल—यह तो बड़े आश्चर्यका समाचार है। इससे आर्यों की जाती हुई इज्जत कुछ न कुछ बच जायगी।

चण्डभार्गव—जिस दिन महाराज जनमेजयने यज्ञ करनेका निश्चय किया था उस दिन आप लोगोंने पक्का वचन दिया था कि हम नागयज्ञसे घबरायेंगे नहीं, पर आज इतने क्यों घबराये हुए हैं ?

पिंगल—होता जी, महाराज परीक्षितके वधके अपमानसे हमारा दिल जल रहा था, इसलिये हम लोगोंको नागयज्ञमें उत्सुकता थी, पर उसके बदलेमें इतना खून बहाया गया है कि उसकी धारमें मन की आग कभी की बुझ चुकी है। हम समझते हैं कि यह मनुष्यताका चिन्ह है, निर्बलताका नहीं।

चण्डभार्गव—पर जिस तक्षकने महाराजका वध किया था, वह तक्षक तो अभी जीवित ही है।

देवशर्मा—पर यह जिस आगमें जल रहा है वह आपकी यज्ञकी आगसे कम नहीं है। अब वह पछतानेके लिये जीवित भी रहे तो क्या हानि है?

चण्डभार्गव—तो आप लोगोंकी क्या इच्छा है? क्या आप यज्ञमें सहयोग नहीं करना चाहते?

पिंगल—सो बात तो नहीं है; हम दोष पर फोड़ना नहीं चाहते पर यह जरूर चाहते हैं कि आप हमारी बातोंपर विचार करें। अगर आपको ठीक जँचे तो इस यज्ञको बन्द करनेका कुछ उपाय सोच निकालें।

चण्डभार्गव—भाई, मन तो मेरे पास भी है और उसकी आग भी बुझ गई है। पर मेरी जिम्मेदारी सबसे अधिक है। जबतक स्वयं जनमेजय नहीं कहते, तबतक यज्ञ बंद करनेकी बात भी मैं उनसे नहीं कर सकता। हाँ, यज्ञ बंद करनेका कोई निमित्त मिले, तो मैं जल्दी राजी हो जाऊँगा।

(इतनेमें जनमेजय आते हैं। वे अपने आसनपर बैठ जाते हैं, यज्ञ कार्य शुरू होता है। एक नागयुवक जलानेके लिये लाया जाता है। उसके हाथ पीछेसे बँधे हैं। ऋषियोंके मुखसे 'स्वाहा' शब्द निकलते ही वह नेपथ्यके कुण्डमें ढकेल दिया जाता है। एक दो बार ज़ोरकी चीख सुनाई देती है। द्वारपालका प्रवेश)

द्वारपाल—महाराज, देवराज इन्द्र पधारे हुए हैं और उनके साथ तक्षक भी हैं।

सब लोग—(आश्चर्यसे उच्च स्वरमें) तक्षक!

जनमेजय—(आनन्दसे सिर हिलाते हुए) ले आओ, ले आओ!

[द्वारपालका प्रस्थान। आपसमें सब लोक प्रसन्नतासूचक इशारे करते हैं। इन्द्र और तक्षकका प्रवेश]

जनमेजय—पधारिये देवराज!

(इन्द्र एक आसनपर बैठते हैं, पासमें तक्षक भी बैठता है)

इन्द्र—तुम लोगोंने यह हत्याकांड क्यों मचा रक्खा है?

जनमेजय—यज्ञको हत्याकांड कहकर यज्ञका अपमान न कीजिये देवराज।

इन्द्र—पर क्या आर्योंमें ऐसा भी कोई यज्ञ हुआ है जिसमें इन्द्रादि देवोंका आह्वान न किया गया हो।

जनमेजय—मंत्रोंके द्वारा सभी देवोंका आह्वान किया गया है।

इन्द्र—पर ऐसा आह्वान पहिले कभी नहीं हुआ।

जनमेजय—पर ऐसा यज्ञ भी पहिले कभी नहीं हुआ।

इन्द्र—यह स्पष्ट ही त्रिविष्टप की अवहेलना है। यह घोर कृतघ्नता है।

जनमेजय—त्रिविष्टपका ऐसा क्या कृत्य है जिसका हनन किया गया है!

इन्द्र—बड़े बड़े आर्य राजाओंको अन्तमें त्रिविष्टप ही शरण देता आया है। तुम्हारे पूर्वज पांडव और उनके पूर्वज भी अन्तमें त्रिविष्टपकी शरणमें आये थे। त्रिविष्टपनेही आर्य सम्राटोंको और आर्य ऋषियोंको जीवनके अन्त तक शान्ति और आनन्द दिया है। तुम्हारे प्रपितामह अर्जुन त्रिविष्टपसे कुछ पाकर और कुछ सीखकर युद्धमें विजयी हुए थे, पर आज तुम उन्हींके वंशज होकर त्रिविष्टपकी इतनी अवहेलना कर रहे हो।

जनमेजय—देवराज! त्रिविष्टपने आर्योंके साथ जो कुछ किया है वह आर्यों की भलाईके लिये नहीं किन्तु अपने स्वार्थके लिये किया है। आर्यों की कमाईके बलपर त्रिविष्टपने सैकड़ों वर्ष गुलछर्रे उड़ाये हैं। अप्सराओंके नामसे कुछ चरित्रहीन स्त्रियाँ देकर आर्य सम्राटोंका सर्वस्व छीन लिया है। अपने यहाँ चरित्रहीन जीवन बितानेके लिये कुछ सुविधा देकर यज्ञके नामपर जो कर लिया है, उससे उसने आर्यावर्तको कङ्गाल बना दिया है। अब आर्यावर्त न त्रिविष्टप की चरित्रहीन अप्सराएँ चाहता है और न उसे वहाँके कुओंकी चाह है; और न ऐसे यज्ञोंकी जरूरत है जिसमें आर्यावर्तका सारा धन-धान्य और सार-पदार्थ त्रिविष्टप चाट जाय। हमारे पूर्वजोंने अगर त्रिविष्टपसे कभी कुछ लिया है तो उसका बदला सौगुणा करके दिया है। हमारे पूज्य प्रपितामह त्रिविष्टपमें कुछ दिन रहे थे परन्तु इसीके बदलेमें त्रिविष्टपके समर्थ शत्रु निवातकवचोंको जीतकर उन्होंने त्रिविष्टप की रक्षा की थी। जबजब त्रिविष्टप पर आपत्ति आई, आर्य लोग सहायताके लिये दौड़े गये। पर त्रिविष्टपने सदा उन्हें लूटनेकी कोशिश की, उन्नतिमें सदा अड़ंगे लाये गये। अगर कभी कुछ दिया तो चरित्रहीन बनाकर निर्बल कर दिया। पर देवराज, अब वे दिन लद् गये। अब आप क्षमा करें। हमें अब त्रिविष्टप की जरूरत नहीं है। आप यहाँ तक आये सो अच्छा किया। साथ ही हमारे यज्ञपशुको लेते आये इसके लिये हम आपके आभारी हैं। यथायोग्य हम आपका पूजा-सत्कार करेंगे।

इन्द्र—जनमेजय, तेरी धृष्टता यहाँ तक बढ़ गई है, इसकी मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था।

जनमेजय—पर जगत् आपकी कल्पनाओंका दास नहीं है देवराज।

इन्द्र—फिर भी तुम मेरे रहते तक्षकको हाथ नहीं लगा सकते।

जनमेजय—देवराज, तक्षककी आहुति दिये बिना यज्ञ पूरा न होगा। इसलिये तक्षककी आहुति अवश्य दी जायगी।

इन्द्र—देखूँ, मेरे हाथसे तक्षकको कौन छुड़ाता है!

जनमेजय—हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप तक्षकको छोड़ दें।

इन्द्र—मैं तक्षकको नहीं छोड़ सकता।

जनमेजय—तो ऋषियो, तक्षकके साथ देवराजकी भी आहुति दे दो।

इन्द्र—(चौंककर) हमारे कर्तव्य-पथमें आप आड़े आवेंगे, तो हम सब और कुछ कर बैठेंगे। सन्मानका मार्ग यही है कि आप तक्षकको छोड़कर चुपचाप चले जावें।

(खिन्न और लज्जित होकर इन्द्रका प्रस्थान)

जनमेजय—कहो नागराज, और है अब कोई तुम्हारा रक्षक?

तक्षक—जनमेजय, मैं मौतसे नहीं डरता। मैं मर जाऊँगा, हजारों नाग भी मर जायेंगे, पर नाग जाति नहीं मर सकती। वह तुम्हारे पापका बदला लेगी।

जनमेजय—ऋषियो, अभी तक्षककी आहुति न दो। सन्ध्याको तक्षककी आहुति दी जायगी, तब तक बाकी आहुतियाँ पड़ने दो, जिससे तक्षक अपने जाति-भाइयोंका आक्रन्दन अच्छी तरह सुन सके। उनकी तड़पन अच्छी तरह देख सके और फिर समझ सके कि आर्योंके साथ छल करनेका क्या फल होता है!

(तक्षकको एक किनारे बाँध कर खड़ा कर दिया जाता है। आस्तीक मुनिका प्रवेश)

आस्तीक—

गीत ९

वे आर्यवीर कहलाते हैं।
जो जग-सेवा कर जाते हैं॥

जो गुणगण पारावार बने।
धनके बलके भंडार बने।
विज्ञान-कलाकी धार बने।
मानवताके अवतार बने॥

सेवाका पाठ पढ़ाते हैं।
वे आर्यवीर कहलाते हैं ॥१॥

जो करुणा-रसकी गागर हैं।
व्यवहार-चतुर हैं, आगर हैं।
सज्जनतामें जो नागर हैं।
सन्नीति सुधाके सागर हैं।
जो दीनबन्धु बन जाते हैं।
वे आर्यवीर कहलाते हैं ॥२॥

जो विश्व-प्रेमकी मूरति हैं।
संयमके घर हैं, सन्मति हैं।
शरणागत-प्राणीकी गति हैं।
जगसेवक और जगत्पति हैं
भीतोंको अभय बनाते हैं।
वे आर्यवीर कहलाते हैं ॥३॥

जो सत्यामृतका पान करें।
जो प्रेम-विजयका मान करें।
जगके हितमें सब दान करें।
अरि भी जिनका गुणगान करें।
भूतलको स्वर्ग बनाते हैं।
वे आर्यवीर कहलाते हैं ॥४॥

जनमेजय—धन्य है ऋषिवर। मैं आपके इस आर्यस्तवनसे प्रसन्न हुआ। आर्य राजाकी प्रसन्नता मोघ नहीं होती, इसलिये आप इच्छानुसार वर माँगिये।

आस्तीक—राजन्, मेरी तृष्णा शान्त है, मैं अपनी अवस्थामें सन्तुष्ट हूँ। इसलिये मैं कुछ नहीं चाहता।

जनमेजय—फिर भी मेरे ऊपर दया करके अवश्य कुछ माँगें और मुझे कृतार्थ करें।

आस्तीक—राजन्, मैंने आजतक कभी किसीसे याचना नहीं की, फिर भी मैं आपके अनुरोधसे एक याचना करता हूँ। पर यदि मेरी याचना निष्फल गई तो मुझे कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

जनमेजय—अगर आपकी याचना मेरे शरीर देनेसे भी पूरी हो सकेगी तो मैं पूरी करूँगा।

आस्तीक—राजन्, मैं असम्भव याचना न करूँगा, न ऐसी ही याचना करूँगा कि जिसे आप पूरी न कर सकें। किसी भी तरहसे आपको हानि पहुँचाना मेरा लक्ष्य नहीं है।

जनमेजय—तब माँगिये ऋषिकुमार।

आस्तीक—मनुष्योंका और मनुष्यताका संहार करनेवाला यह नागयज्ञ तुरन्त बंद कर दिया जाय।

जनमेजय—(चौंककर) यह क्या किया ब्रह्मन्, आपने। यह तो आर्य-जातिकी आशाओंपर पानी फेरना है।

आस्तीक—पर आर्य-जातिसे भी महान मनुष्यताको प्राणदान है।

जनमेजय—आप कोई दूसरा वर माँगिये ऋषिपुत्र। मैं यह वर नहीं दे सकता।

आस्तीक—न दीजिये महाराज, आर्योंकी सत्यवादिताको कलंकित करके इसी तरह आर्योंका मुख उज्वल कीजिये। पर मुझे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अग्नि-प्रवेश करना पड़ेगा। जबतक आप मेरी आहुति न दे दें, तबतक नाग-राज तक्षककी या और भी किसी नाग-युवककी आहुति नहीं दे सकते।

जनमेजय—ऋषिपुत्र, आर्योंके पथमें पड़े हुए इन नागकण्टकोंको दूर हटानेका यह सुवर्ण अवसर बड़ी कठिनाईसे हाथ लगा है। आप इसको विफल न बनाइये। इन्होंने मेरे पिताका धोखेसे वध किया और सदासे ये आर्योंका द्रोह करते रहे हैं। नाग लोग इतने नीच हैं कि अगर किसी नाग स्त्रीका पति आर्य हो तो वह उसकी हत्या करा देगी, अगर उनमेंसे किसीका पिता आर्य हो तो उसे भी मार डालेगा! मेरे पूज्य प्रपितामह अर्जुनको उनकी नागपत्नी उलूपीने अपने पुत्र बभ्रुवाहनसे विषैले बाणोंके द्वारा मरणासन्न करा दिया था। आर्योंसे द्वेष इनकी रगरगमें भरा है। इसलिये नागोंको निर्वंश किये बिना आर्यावर्तमें शान्ति नहीं हो सकती।

आस्तीक—आर्योंने नागोंको जितना सताया है उतना अगर नाग आर्योंको सताते तो आर्य भी नाग-नरेशका वध किये बिना न रहते। तक्षककी उस भूलको सुधारनेका उपाय नागोंको प्रेमसे जीतना है। इस प्रकारके हत्याकाण्डोंसे आर्यावर्तमें शान्ति नहीं हो सकती। आज तुम्हारा अवसर है इसलिये तुम

हत्याकाण्ड कर रहे हो। कल नागोंका भी अवसर आ सकता है इसलिये वे हत्याकाण्ड करेंगे। इस प्रकार दोनोंके सर्वनाशमें इस परम्पराका अन्त होगा। जब एकही देशमें दोनोंको रहना है, तब प्रेम और सांस्कृतिक एकताके सिवाय दूसरा कोई उपाय शान्तिकी स्थापना नहीं कर सकता। महाराज, एक दूसरेके दोष न देखकर गुणही देखना चाहिये। जिन उलूपी देवीका आपने नाम लिया है, वह एक वीरांगना थी। जब अर्जुनने बभ्रुवाहनसे कहा कि मैं तुम्हारा पिता बनकर नहीं, किन्तु राज्यका शत्रु बनकर आया हूँ; इस समय तुम मेरे सच्चे बेटे तभी कहलाओगे जब मुझसे लड़ोगे; तब उलूपीने बभ्रुवाहनको उत्तेजित किया और बभ्रुवाहनने अर्जुनको पराजित किया। बादमें सेवा और पूजा की। आपने समझा ? आर्य और नागके सम्मिलनने कर्तव्य और प्रेमका कैसा सुंदर सम्मिलन किया ! गुणग्रहणकी दृष्टि कीजिये महाराज। गुणको दोष बनाकर वैर और पापको स्थिर न बनाइये।

जनमेजय—आपकी आज्ञासे यज्ञ बंद कर दिया जायगा, पर केवल तक्षककी आहुति दे देने दीजिए।

आस्तिक—यह आपकी ध्वनि नहीं है महाराज, किन्तु आपके भीतर बैठा हुआ अहंकाररूपी पशु बोल रहा है, यही तो मनुष्यताका नाश कर रहा है। जिससे सदाके लिये सुखशान्तिका नाश हो जायगा। अगर आपको यज्ञ करना है तो अहंकाररूपी पशुकी आहुति दीजिये।

जनमेजय—ब्रह्मन्, आप आर्य-जातिको मिटा रहे हैं।

आस्तिक—राजन्, जो पैदा होता है वह मरता है। चाहे व्यक्ति हो, चाहे जाति हो। व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे मिलकर संतान पैदा करता है और इस प्रकार मरकर भी अमर बनता है। जाति भी दूसरी जातिसे मिलकर एक तीसरी जातिका निर्माण करती है और मर कर अमर बनती है। भविष्यमें न आर्य्य-जाति रहेगी, न नाग जाति; मिलकर दोनोंकी एक तीसरी ही जाति बन जायगी। न वैदिक धर्म रहेगा, न नाग-धर्म; मिलकर दोनोंका एक नया धर्म बन जायगा। यज्ञ मिट जायँगे, नये देव, नये विधान और नये आचार आ जायँगे। जब तक ऐसा सम्मिलन और नवनिर्माण होता रहेगा, तबतक मनुष्य मनुष्य बना रहेगा, वह प्रगति करेगा। जिस दिन यह समन्वय-शक्ति नष्ट हो जायगी, उसी दिन मनुष्य पशु बनकर नष्ट हो जायगा। महाराज, इस दुर्लभ मनुष्य-जीवनको इस प्रकार पशु बनाना उचित नहीं है।

होता—आस्तीक मुनिका कथन सर्वथा सत्य है।

अन्यऋषि—यज्ञ बंद होना चाहिये।

आस्तीक—महाराज, अब आपकी क्या इच्छा है? मेरा वर पूरा करते हैं या मैं अग्निमें प्रवेश करके अपने पिताका अनुकरण करूँ? नागवंशका नाश जब होगा, तब होगा; पर एक ऋषिवंशका नाश तो हो ही जायगा।

जनमेजय—आपके पिता कौन?

आस्तीक—मेरे पिता ऋषिराज जरत्। जिनने मनुष्यताकी रक्षामें प्राण दिये, जिन्हें तुम्हारे सिपाहियोंने मार डाला।

जनमेजय—[आश्चर्यसे] मेरे सिपाहियोंने?

आस्तीक—हाँ, हाँ, तुम्हारे सिपाहियोंने। राजन्, तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे नामपर क्या-क्या पाप हो रहे हैं? घरसे बाहर निकलो तो तुम्हें मालूम होगा कि आज संसारमें सबसे खराब गाली 'जनमेजय' है। लोग पिशाच कहलाना पसन्द करते हैं, पर जनमेजय कहलाना पसन्द नहीं करते। तुम जो अत्याचार करा रहे हो उसे देखते हुए यह ठीक ही है।

जनमेजय—अपने शत्रुसे बदला कौन नहीं लेता?

आस्तीक—राजन्, शत्रुसे बदला लिया जाता है, पर निरपराध प्रजाका हत्याकांड, वह भी ऐसा जिसमें मनुष्यत्वका दिवाला निकल जाय और अपने नाशकी भी पर्वाह न रहे, बदला नहीं है। राजन्, जरा कल्पना करो—एक गरीब परिवार है, जिसमें एक विधवा माँ है, जवान लड़का है, जो बीमार होकर खाटपर पड़ा है; उसकी छोटी बहिन है; तुम्हारे अत्याचारोंसे डरकर सारा गाँव उजड़ गया है, इसलिये उन्हें कोई मदद करनेवाला नहीं है। ऐसी बुरी हालतमें तुम्हारे सिपाही उस बीमार युवकको जानवरकी तरह खींचकर लाते हैं। उस विधवा माँ के, उस छोटी बच्चीके आँसू उनके दिलपर कोई असर नहीं करते। इतनेमें एक आर्यऋषि उन्हें रोकते हैं, पर तुम्हारे सैनिक आर्यऋषिकी भी हत्या कर डालते हैं। महाराज, क्या यह शत्रुसे बदला लेना है?

पिंगल—क्या वे ऋषि ही आपके पिता हैं?

आस्तीक—हाँ!

पिंगल—ओह! अब्रह्मण्यम्-अब्रह्मण्यम्।

देवशर्मा—ब्रह्महत्या! ब्रह्महत्या!!

आस्तीक—महाराज, विचारिये! एक दिन तुम्हें भी मिट्टीमें मिलना

है—हमें भी मिट्टीमें मिलना है—नागोंको भी मिट्टीमें मिलना है, उस दिन मिट्टीमें यह भेद न रहेगा कि यह आर्योंकी मिट्टी है—यह नागोंकी मिट्टी है—मिट्टी मिलकर एक हो जायगी। हमारा घमण्ड भी मिट्टीमें मिल जायगा, जिन नागोंसे हमें घृणा है, हो सकता है कि मरनेके बाद हम उन्हींमें पैदा हों। इस प्रकार अपनी घृणाका फल हम ही भोगें। ऐसी अस्थिर और आत्मघातक चीजके लिए आप मनुष्यताकी हत्या करते हैं! एक चिरस्थायी शत्रुताको जन्म देते हैं! एक आर्यनरेश में यह अज्ञान! आश्चर्य है!

[जनमेजय दोनों हाथोंसे सिर पकड़कर पश्चाताप और चिन्तामें डूब जाते हैं।]

आस्तीक—महाराज, बोलिये अब आपकी क्या इच्छा है? आप मेरा वर पूर्ण करते हैं या मैं अग्निप्रवेश करूँ?

जनमेजय—(आस्तीकके सामने सिर झुकाकर) नहीं ऋषिराज, अब और किसीको अग्निमें प्रवेश न करना पड़ेगा। अब मेरी पशुता और अहंकार ही अग्निमें प्रवेश करेंगे।

आस्तीक—[जोरसे] अहिंसा...

सब—परमोधर्मः।

आस्तीक—भगवान सत्यकी......

सब—जय!!!

आस्तीक—महाराज जनमेजय की...

सब—जय।

जनमेजय—आस्तीक मुनि की......

सब—जय।

आस्तीक—महाराज, मुझे विश्वास था कि आप मेरी प्रार्थना मानेंगे, यज्ञ बन्द होगा। उसके लिये मैंने यह गीत बनाया है।

आस्तीक—[आस्तीकके साथ सब गाते हैं]

गीत १०

अब हम हैं मानव सन्तान।
आर्य, नागका भेद भुलाया।
जाति-पाँतिका फन्द छुड़ाया।
मानव-मानव एक हुए सब, किया प्रेम सन्मान।
अब हम हैं भारत सन्तान ॥ १ ॥

मानवताका मान करेंगे।
प्रेम-धर्मका गान करेंगे॥
घर-घर होगी मानवता पर अब पशुता कुर्बान।
अब हम हैं भारत सन्तान॥ २॥

हर, हरि होंगे; हरि, हर होंगे।
अब इनके घर-घर-घर होंगे।
एक बनेगा धर्म सभीका, होगा एक विधान।
अब हम हैं मानव-सन्तान॥ ३॥

एक सभ्यता होगी प्यारी।
होगी भाषा एक हमारी।
एक राष्ट्र होगा हम सबका प्यारा हिंदुस्तान।
अब हम हैं भारत सन्तान॥ ४॥